कटु सत्य

कश्मीरी पंडित अपने को कश्यप मुनि की सन्तान मानते हैं। ऐसी मान्यता है कि कश्यप मुनि ने अपनी तपस्या और आराधना के बल पर भगवान विष्णु को इस धरातल पर प्रकट होने को विवश किया, जिन्होंने अपने बाण से बारामुला के निकट पर्वत श्रृंखला को भेदकर उनसे घिरे हुये सतीसर सरोवर के जल को निकाल कर उसमें छिपे हुये राक्षस जलोद्भव का वधकर ऋषियों तथा मुनियों को उसके अत्याचारों और आतंक से मुक्त किया जो उनकी पूजा–अर्चना तथा योग साधना में विघ्न डालकर उनमें व्यवधान उत्पन्न करता था।

कश्यप मुनि ने तदुपरान्त इस समतल भूमि पर अपनी इच्छा के अनुरूप विभिन्न स्थानों से अति विशिष्ट व्यक्तियों को लाकर बसाया जो कालान्तर में कश्मीरी पंडित के सम्बोधन से पुकारे जाने लगे और यह भू–भाग कश्यपमीर या कश्मीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहीं दूसरी ओर योग्य इतिहासकारों के अनुसार मध्य एशिया से आर्य जाति के लोग तेज़ गति के घोड़ों के रथ पर बैठकर इस कश्मीर घाटी में आये और वहां पूर्व में बसी हुई आदिम जातियों को खदेड़ कर अपना आधिपत्य स्थापित कर बस गये। इस प्रकार का उल्लेख पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी बहु चर्चित पुस्तक ''दि डिस्कवरी आफ इण्डिया'' में किया है और इस नाते कश्मीरी पंडित उसी आर्य जाति के वंशज माने जाते हैं जो अपने को सबसे पवित्र आर्य वंशी मानते हैं।

कश्मीरी पंडितों का इतिहास प्रचलित मान्यताओं के आधार पर लगभग 5000 वर्ष पुराना माना जाता है और ऐसी धारणा है कि लगभग 5000 वर्ष पूर्व वेदों में वर्णित सरस्वती नदी मानसरोवर झील से निकलकर कश्मीर की पीर पंजाल पर्वत श्रृंखला से होती हुई तथा राजस्थान के मरुस्थली भू–भाग से बहती हुई अरब सागर में जाकर गिरती थी। इस नदी के तटों पर सारस्वत ब्राह्मण निवास करते थे जिनका मुख्य व्यवसाय ज्ञानोपार्जन करना था। कालान्तर में किसी भयंकर भौगोलिक परिवर्तन के कारण यह वैदिक सरस्वती

नदी पृथ्वी के भीतर समा गयी और इसके तटों पर बसे हुये सारस्वत ब्राह्मण वहां से पलायन करके कश्मीर घाटी में जाकर बस गये। इसी कारण कश्मीरी पंडित अपने को सारस्वत ब्राह्मण कहते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व मुम्बई में स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने आधुनिक उपकरणों का प्रयोग कर राजस्थान के बामेर और जैसलमेर क्षेत्र में भूमिगत जल स्रोतों का पता लगाने के लिये व्यापक परीक्षण किये और उनको इस बात के ठोस प्रमाण मिले कि वहां की मरुस्थली भूमि के भीतर मीठे पानी के जलस्रोत विद्यमान हैं, जिनकी आयु उन वैज्ञानिकों ने कार्बन डेटिंग का उपयोग करते हुए लगभग 5000 वर्ष निर्धारित की है जो इस बात की स्पष्ट रूप से पुष्टि करता है कि लगभग 5000 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में कोई नदी बहती थी जो, अब धरातल के भीतर किसी भूचाल के कारण समा गयी है तथा इस नदी के तटों पर निश्चित रूप से कोई आबादी अवश्य रहती होगी।

अब यदि हम अपने देश की सामाजिक व्यवस्था का गूढ़ अध्ययन करें, और विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के इतिहास का निष्पक्ष विश्लेषण करें तो कुछ प्रमुख बातें स्वयं स्पष्ट हो जायेंगी। हमें इस बात का आभास होगा कि जब भी किसी व्यक्ति या समुदाय को उसकी जड़ों से काट दिया जाता है और उसको अपनी मातृभूमि से अपनी सदियों पुरानी स्थापित सभ्यता, संस्कृति, मान्यताओं, परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों तथा रीति–रिवाजों को छोड़कर किसी एकदम नये स्थान और वातावरण में पलायन करने को विवश किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से उस समुदाय या व्यक्ति में एक बंजारा प्रवृत्ति जन्म लेती है जो निश्चित रूप से उसकी मानसिकता को प्रभावित करती है। इस मानसिक विकार के कारण वह व्यक्ति या समुदाय किसी एक स्थान पर अधिक समय तक टिक नहीं पाता है और एक यायावर की भांति एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकता रहता है कि कहीं शायद उसको मन की शान्ति प्राप्त हो जाये। पर इस प्रकार की मनोदशा के कारण वह कहीं भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने के योग्य नहीं रह पाता और उसकी वास्तविक स्थिति एक थाली के बैंगन के समान हो जाती है। वह केवल वर्तमान में जीता है, क्योंकि न तो उसका कोई अतीत होता है और न ही उसमें अपने भविष्य को संवारने की कोई इच्छा शक्ति रह जाती है, उसके पास अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित की हुई कोई सम्पदा नहीं

होती, उसे अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करके अपने परिजनों के लिए संसाधन जुटाने पड़ते हैं ताकि वह किसी प्रकार अपने अस्तित्व को बचायें रख सके। वो ही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि होती है।

यदि हम समय–समय पर कश्मीर घाटी से कश्मीरी पंडितों द्वारा किये गये पलायन के लगभग 300 वर्ष पुराने इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टि डालें तो बहुत सारी बातें स्वयं स्पष्ट हो जायेंगी। जिस प्रकार समाज के अन्य वर्ग इस अन्तराल में संगठित होकर एक राजनैतिक शक्ति बने और जिस अनुपात में उन्होंने अपनी जनसंख्या में वृद्धि की उसकी तुलना में कश्मीरी पंडित न तो संगठित रह पाये और न ही उन्होंने अपनी जनसंख्या में उस अनुपात में वृद्धि की। उपलब्ध जनसंख्या के आंकड़ों के अनुसार उनकी जनसंख्या में तीव्र गति के साथ निरन्तर गिरावट आ रही है और वे समाज में अपनी विशिष्ट पहचान को स्वयं नष्ट करने में जुटे हुये हैं, जिसके लिये किसी अन्य पर दोष मढ़ना कतई उचित नहीं है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे का पूरा समुदाय कालसर्प योग से प्रभावित है जिसके कारण अनेक नामी–गिरामी खानदान एक–एक करके समाप्त होते जा रहे हैं। यदि समय रहते उचित कदम नहीं उठाये गये तो वह दिन दूर नहीं जब यह समुदाय केवल इतिहास के पृष्ठों में सिमट कर रह जायेगा।

मुगल शासनकाल में दिल्ली का बाजार सीताराम तथा अवध में नवाबी शासन काल में लखनऊ का कश्मीरी मोहल्ला, कश्मीरी पंडितों के प्रमुख केन्द्रों के रूप में आबाद हुये और लगभग 100 वर्षों तक 18वीं और 19वीं शताब्दी में उनकी सामूहिक शक्ति का गढ़ बने रहे। हमारे पूर्वजों ने एकता की शक्ति को समझा और उसको अपने जीवन में महत्त्व दिया और एक स्थान पर संगठित होकर एक वृहद् परिवार के रूप में रहना अधिक उचित समझा ताकि वे व्यापक समाज में अपनी विशिष्ट पहचान को संजोये रख सकें और अपनी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति में बाहर के तत्त्वों का समावेश होने की प्रक्रिया को काफी सीमा तक यथासंभव रोका जा सके ताकि उसमें किसी प्रकार के बाहरी प्रदूषण की संभावना न उत्पन्न होने पाये, जो भविष्य में घातक सिद्ध हो और समस्त बिरादरी को नष्ट कर दे। वह अपने कुछ इन्हीं सिद्धान्तों के कारण संख्या में कम रहते हुए भी समाज के हर वर्ग पर अपना वर्चस्व

स्थापित करने में सफल हुये तथा आदर और सम्मान का पात्र बने। उनके वंशज अंग्रेजों के शासन काल में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव और कुछ अपने निजी स्वार्थों को साधने की होड़ में उन स्थापित मर्यादाओं को बनाये रखने में सक्षम नहीं सिद्ध हो सके और बिरादरी में सन् 1884 में विघटन और बिखराव की नींव पड़ी जब पंडित बिशन नरायण दर ने बिरादरी की मान्यता के विरुद्ध लखनऊ से लन्दन की समुद्री यात्रा की, जो उस काल खण्ड में वर्जित थी। बिरादरी के सामाजिक बन्धन टूटने प्रारम्भ हुये और बिरादरी के प्रगतिशील सदस्य स्थापित मान्यताओं और परम्पराओं को रूढ़िवादी बताकर उनको नकारने लगे। इसने बिरादरी में एक बिल्कुल नयी क्रान्तिकारी विचार धारा को जन्म दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि वे मूल धारा से कट कर कुछ समय पश्चात् अपने अस्तित्व को ही समाप्त कर बैठे, और कालचक्र की गति में गुम हो गये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत में अनेक जातियां आयीं उन्होंने यहां राज भी किया, परन्तु एकता के अभाव में वह समय के साथ लुप्त हो गयीं। अब उनका वर्णन केवल हमें इतिहास के पृष्ठों में पढ़ने को मिलता है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अब भी हम अपने प्राचीन इतिहास से किसी प्रकार का सबक लेने के लिय तैयार नहीं हैं, चाहे हमें कितनी ही कठिनाइयों का सामना करने को बाध्य होना पड़े। इस समय भी कश्मीरी समाज के अनेक संगठन कार्यरत हैं जिनके तथाकथित नेतागण अपनी सुविधाओं के अनुसार उनकी नीतियों को निर्धारित करते है, चाहे उनमें आपस में किसी प्रकार का सामंजस्य या तारतम्य हो या न हो। इसके कारण संगठित रूप से एक मंच पर एक विचार धारा का अनुभव कभी संभव नहीं हो पाता है और सब अपना अलग–अलग राग अलापते प्रतीत होते हैं। वही कुछ सिरफिरे और अदूरदर्शी नेता अपनी नेतागिरी को चमकाने के लिये आपस में ही तलवार भांजने को अधिक प्राथमिकता देते हैं ताकि उनका अपने चेले चपाटों पर वर्चस्व बना रहे जिसका पूरा लाभ अधिकारीगण उठाते हैं। एक आम कश्मीरी पंडित अब इस प्रकार की आपस में नेताओं की नूरा–कुश्ती और पैंतरे बाजी से त्रस्त हो चुका है पर समाज के नेता उसकी लाचारी और विवशता का अनुचित लाभ उठा कर अपनी राजनैतिक रोटियां सेंकने में व्यस्त हैं, क्योंकि उसी में उनका व्यक्तिगत स्वार्थ निहित है।

क्या कभी इस भयानक काली सुरंग का अन्त होगा और एक नयी आशा की किरण दिखाई देगी अब यह एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह बनकर पूरे कश्मीरी पंडित समाज के सामने खड़ा है। कोई भी समुदाय या वर्ग बिना संगठित हुये कभी भी शक्तिशाली नहीं बन पाया और विशेष रूप से समाज की उस व्यवस्था में जहां नियमों और सिद्धान्तों के स्थान पर उस वर्ग विशेष की जनसंख्या के आधार पर सरकारें अपनी नीतियां निर्धारित करती हों ताकि उनका वोट बैंक सुरक्षित रह सके। यह समय इस विकराल समस्या के निदान के लिए गूढ़ चिंतन तथा मनन करने का है कि किस प्रकार इस पर विजयश्री प्राप्त की जा सके न कि व्यर्थ की बातों में अपनी सामूहिक शक्ति को नष्ट करने का। अब उपयुक्त समय आ गया है जब हम एक ठोस सकारात्मक कार्यक्रम को मूर्ति रूप प्रदान करें और उस दिशा में क्रियाशील हो जायें जो हमारे समाज को संगठित कर उसकी विसंगतियों को समाप्त करते हुये उसमें एक नई ऊर्जा और स्फूर्ति का संचार कर सकें, अन्यथा भविष्य में आने वाली पीढ़ियां कदाचित हमको क्षमा करने में अपने को असमर्थ पायेंगी।

हमारे देश की वर्तमान राजनीति के संदर्भ में यह कहना कदाचित अनुचित न होगा कि समाज का जो भी समुदाय या वर्ग संगठित है वह सरकार से अपने अधिकारों को पूर्ण कराने में सक्षम है। नेतागण भी उनकी जनसंख्या के आधार पर उनकी उचित अथवा बेतुकी मांगों को महत्त्व देते हैं, चाहे उनकी सरकार से अपेक्षाएं न्यायोचित अथवा तर्कसंगत हों अथवा नहीं, पर इसके एकदम विपरीत वह समुदाय या वर्ग जो संगठित नहीं है, प्रायः सरकार की उपेक्षा का शिकार रहता है चाहे उसकी मांग कितनी भी उचित या तर्कसंगत क्यों न हो। परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिये एक जुट होकर संघर्ष करने की आवश्यकता होती है जिसके लिये दहकते हुये अंगारों को चिमटी से नहीं अपितु अपने हाथ की उँगलियों से स्पर्श करना पड़ता है।

हमारे पूर्वजों ने जिन विषम परिस्थितियों और प्रतिकूल वातावरण में अपने को समाज में कठोर परिश्रम करके स्थापित किया और आदर तथा सम्मान का पात्र बनाया वह वास्तव में वन्दनीय है। उसका सही मूल्यांकन करने की इस समय नितान्त आवश्यकता है। तब हम किसी सही मार्ग को खोजने में सफल हो पायेंगे। जिस व्यक्ति कों अपनी प्राचीन विरासत और इतिहास में रुचि नहीं

है उसके जीवन का वास्तव में कोई अर्थ नहीं। वह केवल अपने समय की उपभोक्तावादी संस्कृति का मात्र एक चलता–फिरता यंत्र है, क्योंकि मानवीय संवेदनाओं का उसके जीवन में कोई महत्त्व नहीं। आध्यात्मिक शक्ति ही मानवता के विकास की कुंजी है जो मानव को महामानव होने के योग्य बनाती है। यही भारत विद्या है और भारतीय दर्शन का मूल मंत्र है।

हमारे लिये यही उपयुक्त होगा कि हम समय की नज़ाकत को उचित प्रकार से समझने का कष्ट करें और अपने आचरण को उसी के अनुकूल ढालने का कष्ट करें, तभी हम अपने स्वर्णिम भविष्य की कल्पना को एक साकार रूप दे पाने में सफल हो पायेंगे अन्यथा कहीं हमारा मधुर स्वप्न अतीत के काले साये में विलीन होकर न रह जाये और हमको एक ऐसे स्थान पर न लाकर पटके, जहां पर हमें खुद अपनी खबर न हो, और हम बे–साख्ता यह कहने को बाध्य हो जायें कि –

कैसा बुतखाना कहां का दर कैसी खानकाह
जिस जगह सजदा किया हमने वो काबा हो गया।

कश्मीरी पंडित और 1857 की क्रान्ति

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि 1857 की क्रान्ति के बारे में इतिहासकारों में अनेक मतभेद हैं। वास्तव में इसका एक मूल कारण यह भी हैं कि हमारे देश में इतिहास लेखन की कभी कोई परम्परा नहीं रही और कुछ तथाकथित इतिहास कथाकारों ने मिथकों को आधार मानकर अपने अधकचरे लेखन द्वारा इस सम्बन्ध में अनेक नयी भ्रान्तियों को जन्म दिया है, जिसके कारण यह विषय और अधिक जटिल और विवादास्पद बन गया है क्योंकि इस गम्भीर विषय पर आज तक किसी ने उचित शोध कार्य करके वास्तविक तथ्यों को जनता के सामने लाने की आवश्यकता नहीं समझी और सदैव अपना हित साधने और अपना उल्लू सीधा करने के लिये इतिहास को तोड़–मरोड़ कर जनता के सामने प्रस्तुत किया जाता रहा ताकि किसी प्रकार अपनी कुर्सी बचायी जा सके और राजसत्ता पर अपनी पकड़ निरन्तर मज़बूत बनी रहें। यही एक मुख्य कारण है कि आज तक हम ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने में असमर्थ है कि अयोध्या में विवादित ढ़ाँचा वास्तव में राम मन्दिर था या फिर बाबरी मस्जिद और मध्य प्रदेश के भोजशाला में स्थित विवादित स्थल वास्तव में मालवा के राजा भोज द्वारा निर्मित देवी सरस्वती का मन्दिर है या फिर सूफी संत कमालउद्दीन चिश्ती की मज़ार।

हमारे देश में ऐसे अनेक उदाहरण है पर इस आलेख में उन सबकी विस्तार से चर्चा करना सम्भव नहीं है। यहाँ पर सुधी पाठकों को विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि स्वतंत्रता से पूर्व हमारा देश अनेक छोटी–छोटी रियासतों और रजवाड़ो में बंटा हुआ था। जिनके शासक राजा, महाराजा और नवाब अपने राज्यों की सीमायें बढ़ाने के लिये निरन्तर एक–दूसरे पर आक्रमण किया करते थे और उनके दरबारों में भाट, चारण और चाटुकार उनकी प्रशंसा में उनकी वीरता, पराक्रम और शौर्य की गाथाओं का गुणगान किया करते थे ताकि वह उनके कृपापात्र बने रहें और अपना जीवनयापन मौजमस्ती के साथ करते रहें। उस समय देश और राष्ट्र क्या होता है न तो इसकी किसी के पास कोई कल्पना थी और न ही कोई चिन्ता थी। एक आम आदमी का नज़रिया

काफ़ी संकीर्ण हुआ करता था और वह बहुत दूर की सोचना कभी गँवारा नहीं करता था। उसकी इच्छाये बहुत अधिक सीमित हुआ करती थीं।

अतः 1857 की क्रान्ति की पृष्ठभूमि को उचित रूप से समझने के लिये तथा उसका सही मूल्यांकन तथा निष्पक्ष विश्लेषण करने के लिये हमे इससे सम्बन्धित इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी ताकि हम किसी उचित निष्कर्ष पर पहुँच सकें। यह सर्वविदित है कि अंग्रेज़ भारत में मुख्य रूप से व्यापार करने के उद्देश्य से आये जिसके लिये उन्होंने इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ेबेथ प्रथम (1553–1603) के हस्ताक्षर युक्त चार्टर के द्वारा 31 दिसम्बर सन् 1600 को लन्दन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी नाम की एक संस्था का गठन किया। सर टॉमस रो नाम का प्रथम अंग्रेज़ राजदूत मुग़ल सम्राट जहाँगीर (1605–1627) के शासन काल में सन् 1618 के आसपास लन्दन से भारत आया और आगरा में मुग़ल सम्राट के दरबार में उपस्थित होकर उनसे व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की।

उस समय तक फ्रांसीसी और पुर्तगाली व्यापार करने के लिये भारत में अपने पैर पसार चुके थे और अपनी चौकियों को विधिवत स्थापित कर चुके थे। अपने–अपने व्यापारिक हितों को लेकर अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों तथा पुर्तगालियों में निरन्तर युद्ध हुआ करते थे, जिसके कारण अंग्रेज़ों ने कलकत्ता (कोलकता) को ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुख्यालय बनाया और धीरे–धीरे भारत में अपनी पैठ मज़बूत की और अपनी सुरक्षा के लिये भारत में योरोपियन सेना की टुकड़ियों की तैनाती प्रारम्भ की।

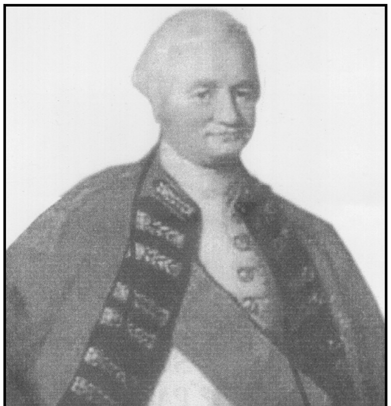

बंगाल का प्रथम अंग्रेज़ गवर्नर रॉबर्ट क्लाइव

सन् 1757 के प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को उसके सिपाहसालार मीर जाफ़र से मिलकर अंग्रेज़ों ने उसको परास्त किया जिसमें मीर जाफ़र ने सिराजुद्दौला को मार डाला। मीर जाफ़र के इस कृत्य से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ों ने उसको बड़ी चतुरायी के साथ बंगाल का नवाब बना दिया जिसको बाद में उसके दामाद मीर कासिम ने एक षडयंत्र रचकर मारा डाला।

उस समय राजदरबारों में इस प्रकार के षडयंत्र काफ़ी हुआ करते थे जिनमें लौडियों के पुत्र और नाखांदे व्यक्ति भी जोड़–तोड़ करके अपने को राजा या नवाब घोषित कर दिया करते थे जिस प्रकार मोहम्मद गौरी के आक्रमण के पश्चात उसका एक गुलाम कुतुबउद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट बन बैठा था और उसने अपना झण्डा बुलन्द करने के लिये पृथ्वीराज चौहान के किले के प्रांगण में कुतुबमीनार तामीर करवा दी। बंगाल की इस ऊहापोह की स्थिति का पूरा लाभ उठाते हुए रार्बट क्लाइव ने अपने को बंगाल का गर्वनर घोषित कर दिया और इस प्रकार भारत की राजनीतिक सत्ता पर अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ अंग्रेज़ों की इस तीव्र गति के साथ बढ़ती हुई सैन्य शक्ति तथा भारत की राजनीति में अनावश्यक हस्तक्षेप से विचलित होकर दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाह आलम (1759–1803) ने अपने नायब वज़ीर तथा अवध के सूबेदार नवाब शुजाउद्दौला, बनारस के राजा चेत सिंह तथा बंगाल के नवाब मीर कासिम के साथ एक गुप्त मंत्रणा की कि किस प्रकार भारत को अंग्रेज़ों के शिकंजे से मुक्त कराया जाये और उनको बंगाल की खाड़ी में खदड़ने की एक बृहद योजना तैयार की गयी। जिसके तहत सन 1764 में अवध और बिहार की सीमा पर बक्सर के मैदान में मुग़ल शाही सेना और मुनरों के नेतृत्व में अंग्रेज़ों की फ़ौज के मध्य एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें नवाब शुजाउद्दौला को पराजय का मुँह देखना पड़ा।

मेरे पूर्वज पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्ग़ा जो उस समय नवाब की मुख्य पत्नी बहू बेगम की शाही घुड़सवारों की टुकड़ी के सेनानायक थे ने किसी प्रकार नवाब शुजाउद्दौला को युद्धभूमि से अपने सुरक्षा घेरे में सकुशल फ़र्रूख़ाबाद पहुँचाया जहाँ उनकी जागीरें थीं। उस समय फ़र्रूख़ाबाद सामरिक दृष्टि से एक बहुत ही महत्वपूर्ण इलाका था, जहाँ युद्ध के लिये भाड़े के सैनिकों की भर्ती होती थी। वहाँ एक पुराना किला था जिसमें गोला–बारूद का भण्डार रहता था। इसी किले में नवाब शुजाउद्दौला को छुपाकर रखा गया था ताकि अंग्रेज़ उन्हें गिरफ़्तार करके फाँसी न दे दें। इस किले पर उस समय पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्ग़ा का पूर्ण नियंत्रण था। बहू बेगम उनके इस वीरता पूर्ण कार्य से बहुत अधिक प्रसन्न और प्रभावित हुई और उन्होंने पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्ग़ा को 200 चाँदी के सिक्के वसीके के रूप में पुश्त दर पुश्त देने का फरमान जारी किया। वह बहुत समझदार और दूरदर्शी महिला थी। जिनके प्रयासों से नवाब शुजाउद्दौला को अवध का सिंहासन पुनः प्राप्त हो

सका पर बहू बेगम और अंग्रेज़ों के मध्य हुई सन्धि के अनुसार अवध में नवाब के कार्यकलापों पर दृष्टि रखने के लिये अंग्रेज़ रेज़ीडेन्ट को तैनात कर दिया गया। इस महत्वपूर्ण घटना के पश्चात भारत में अंग्रेज़ों ने जितने भी युद्ध लड़े उन सब में अवध के नवाबों ने अंग्रेज़ों का धन और बल से साथ दिया जिसके कारण वह सम्पूर्ण भारत में अपनी विजय पताका लहराने में सफल हो सके अन्यथा भारत का इतिहास कदाचित कुछ और होता। आज भी सरकार द्वारा शर्ग़ा ख़ानदान के हर सदस्य को यह शाही वसीका दिया जाता है। जिसकी पुष्टि पिक्चर गैलरी में स्थित वसीका आफ़िस के अति गोपनीय दस्तावेज़ों से की जा सकती है।

फ़र्रूख़ाबाद के उस समय के सामरिक महत्व को समझने के लिये हमें उसके गौरवशाली इतिहास पर दृष्टि डालना परम आवश्यक है। प्राचीनकाल में यह सारा क्षेत्र आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से बहुत अधिक सम्पन्न था। हमारे धर्मग्रन्थ रामायण की नायिका सीता जी तथा महाभारत की नायिका द्रोपदी का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। पूर्व वैदिक काल में यह क्षेत्र सोमवंशी राजा ययति के राज्य का एक भाग था। इसी राजा ययति के कनिष्ठ राजा पुरू की 14वीं पीढ़ी में हुए राजा शकुन्तल भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। महाभारत काल में इस क्षेत्र को पंचाल प्रदेश कहा जाता था।

फ़र्रूख़ाबाद नगर का अस्तित्व आज से लगभग 4200 वर्ष पूर्व महाभारत काल में दुर्योधन द्वारा पाण्डवों का विनाश करने हेतु बनाये गये लाक्षाग्रह से उनके तथा माता कुन्ती के बच निकलने तथा तत्कालीन पंचाल देश के गंगाघाट पर बने राजा द्रुपद के किले के दक्षिण में शस्त्र गुरु द्रोणाचार्य के निवास स्थान तथा राक्षस बाकापुर के निवास स्थान के मध्य मीष्मपुर के नाम से प्रकाश में आया जहाँ पाण्डव अज्ञातवास के समय रहे थे। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार सन् 1714 ई. में मोहम्मद बंगश खाँ ने दिल्ली के तत्कालीन मुग़ल सम्राट फ़र्रूख़सियर

बहू बेगम

(1713–1719) के नाम पर इस क्षेत्र का नाम फ़र्रूख़ाबाद रख दिया जो एक बहादुर पठान सेनानायक था और जिसको सन् 1713 में फ़र्रूख़सियर ने नवाब की उपाधि से सम्मानित किया था और जागीर के रूप में 12 गाँव दिये थे। उसी ने फ़र्रूख़ाबाद में एक किले का निर्माण कराया और मुग़ल सम्राट को विभिन्न युद्धों में जमकर मदद करी।

उसने कालकाखेड़ा में अपने लिये भव्य हवेली बनवायी और उस गाँव का नाम बदलकर मोहम्मदाबाद रख दिया। यह क्षेत्र मुग़ल काल में पठानों का गढ़ रहा। जिनका मुख्य कार्य भाड़े के सैनिकों के रूप में विभिन्न राजाओं तथा नवाबों के लिये युद्ध लड़ना होता था। वह इसी उद्देश्य के लिये अफ़ग़ानिस्तान के विभिन्न नगरों से कबीलों के रूप में भारत आते थे। नवाब मोहम्मद बंगश खाँ के वंशज अमजद अली खाँ बंगश प्रसिद्ध सरोदवादक हैं।

नवाब शुजाउद्दौला की 26 जनवरी सन् 1775 को 46 वर्ष की आयु में हृदयगति रूक जाने से मृत्यु हो गयी। जिसके पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब आसफ़उद्दौला अवध के शासक बने जिन्होंने फ़ैजाबाद के स्थान पर लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया। जिसके कारण अंग्रेज़ फ़ौजी, अफसरों तथा उनके परिवारों का लखनऊ में आगमन प्रारम्भ हुआ। उस समय लखनऊ नगर लगभग 22 गाँवों का एक झुण्ड था जो आपस में काफ़ी दूरी पर बसे हुए थे। नवाब आसफ़उद्दौला ने दौलतख़ाने में अपना डेरा जमाया तो वही निकट गोमती नदी के उत्तरी किनारे पर अंग्रेज़ों ने अपनी छावनी बनाई जहाँ सिपाहियों के रहने के लिये झोपड़ियाँ बनाई गयीं। उस समय गोमती नदी को पार करने के लिये कोई पुल नहीं था और गोमती के उस पार किसी प्रकार की कोई आबादी नहीं थी। नवाब आसफ़उद्दौला की पत्नी बेगम शमसुल निसा बहुत अधिक सुन्दर महिला थीं जिनकी जागीर की सुरक्षा के लिये बहू बेगम ने अपने ख़ास विश्वासपात्र मेरे पूर्वज पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्ग़ा तथा उनके अनुज भ्राता पंडित निरंजन दास कौल शर्ग़ा को तैनात किया और इस प्रकार मेरे दोनों पूर्वजों का फ़ैजाबाद से लखनऊ आना हुआ और वह अपने परिवारों सहित रानी कटरा मुहल्ले में रहने लगे। नवाब आसफ़उद्दौला के अपनी पत्नी शमसुल निसा बेगम के साथ कभी भी मधुर सम्बन्ध नहीं रहे क्योंकि नवाब को कुछ दूसरा शौक था जिससे आजिज होकर बेगम शमसुल निसा ने कम्पनी के तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स को एक गुप्त

संदेश भेजा कि उनके रहने के लिए किसी अन्य स्थान पर उचित व्यवस्था करा दी जाय जिसके पश्चात उनके रहने के लिये अंग्रेज़ों ने इलाहाबाद में उचित व्यवस्था कर दी जो उस समय अवध की सीमा के बाहर था।

नवाब आसफ़उद्दौला की लम्बी बीमारी के बाद 21 सितम्बर सन् 1797 को मृत्यु हो गयी जिसके पश्चात कुछ चाटुकारों ने वज़ीर अली को उनके उत्तराधिकारी के रूप में अवध के राज सिंहासन पर बैठा दिया पर कम्पनी के गर्वनर जनरल सर जॉन शोर ने अपनी गुप्त सूचना के आधार पर उसको नवाब आसफ़उद्दौला का पुत्र मानने से इन्कार कर दिया और उसके स्थान पर बनारस से नवाब आसफ़उद्दौला के सौतले भाई नवाब सआदत अली खाँ को सन् 1798 में लाकर अवध का शासक बना दिया। नवाब सआदत अली खाँ पूर्व में विद्रोह करके पहले आगरा फिर बनारस चले गये थे।

नवाब सआदत अली खाँ अंग्रेज़ों के इस कृत्य से इतने अधिक प्रसन्न और प्रभावित हुए जैसे मानो बिल्ली के भाग्य से छीकां टूटा हो उन्होंने अपनी दरियादिली दिखाते हुए सन् 1801 में लार्ड रिचर्ड वेल्सले के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये और आधा अवध अंग्रेज़ों के नाम लिख दिया जिससे अंग्रेज़ों के हौसले और अधिक बुलन्द हो गये। अंग्रेज़ों ने इस सुनहरे अवसर को अपने पक्ष में भरपूर प्रयोग करने तथा अवध में अपनी सैन्य शक्ति को और अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से नवाब सआदत अली खाँ के सम्मुख एक बड़ी छावनी निर्माण करने के लिये भूखण्ड उपलब्ध कराने का प्रस्ताव पेश कर दिया ताकि वह हथियार तथा गोला बारूद रखने के लिये कमरे, घोड़ों को रखने के लिये बड़े अस्तबल, अंग्रेज़ फ़ौजी अफसरों के लिये बड़े पक्के मकान और सैनिको के लिये बैरकों इत्यादि का सुव्यवस्थित तरीकें से निर्माण सम्भव हो सके। इस सम्बन्ध में एक गोपनीय पत्र अवध के रेजीडेन्ट कर्नल जॉन कौलिन्स ने कलकत्ते में कम्पनी के गर्वनर जनरल को भी लिखा। नवाब सआदत अली खाँ उस समय नगर से दूर गोमती पार मड़ियाँव शिकार खेलने के लिये जाते थे जो एक उबड़–खाबड़ इलाका था और जहाँ जंगली जानवरों का बराबर आतंक बना रहता था।

नवाब सआदत अली खाँ ने सन् 1807 में अंग्रेज़ों को इस स्थान पर छावनी बनाने का फरमान जारी कर दिया और अपने आवास के लिये फ्रांसीसी फ़ौजी अफसर मेजर जर्नल क्लाड मार्टिन से पूर्व में गोमती नदी के तट पर स्थित

उनका महल क्रय कर लिया जिसके लिये क्लाड मार्टिन को काफ़ी नज़राना और शुकराना भी दिया गया और उसकी खिदमत के लिये चार कसी हुई कनीज़ों को भी भेजा गया जो ठीक प्रकार से उनका ख्याल रख सके। नवाब सआदत अली खाँ ने इस महल का नाम अपनी माँ रानी छतर कुँवर के नाम पर छतर मंजिल रख दिया।

नवाब सआदत अली खाँ को अंग्रेज़ों का कुछ अधिक पक्षधर होने के नाते एक षड़यंत्र के तहत 11 जुलाई सन् 1814 की मध्यरात्रि को जहर दे दिया गया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब गाज़ी उद्दीन हैदर अवध के शासक बने जिन्होंने तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिंस के कहने पर अपने को एक स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और दिल्ली से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। 9 अक्टूबर सन् 1819 को उन्होंने अपनी विधिवत ताजपोशी की और अपने नाम से सिक्के जारी कर दिये। यही से एक प्रकार से अवध के पतन की कहानी प्रारम्भ हुई।

जब सन् 1848 में लार्ड डलहौज़ी गर्वनर जनरल बने तो उन्होंने सम्पूर्ण भारत पर एकमात्र अंग्रेज़ों का शासन स्थापित करने की कार्य योजना बनाई। जिसके तहत 1849 में उन्होंने कर्नल स्लीमन को रेजीडेन्ट बनाकर लखनऊ भेजा उसकी रिपोर्ट के आधार पर अवध के अधिकरण की योजना तैयार की गई। जिसको अन्जाम देने के लिये जनरल आउटरम को सन् 1856 में रेजीडेन्ट बनाकर लखनऊ भेजा गया और फ़ौज की कई टुकड़ियाँ लखनऊ के लिये रवाना की गयी ताकि किसी प्रकार की गड़गड़ी से समय रहते प्रभावशाली ढंग से निपटा जा सके। 3 फरवरी सन् 1856 को अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी छोड़ने का नोटिस दे दिया गया और 7 फरवरी सन् 1856 को उनको फ़ौज के कड़े पहरे में लखनऊ से कलकत्ते के लिये रवाना कर दिया गया जहाँ उन्हें फोर्ट विलियम्स में नज़रबन्द कर दिया गया।

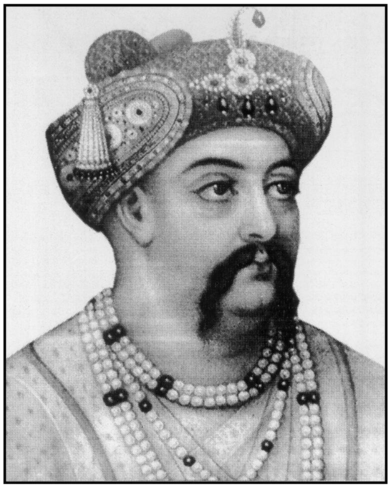

नवाब आसफ़उद्दौला

यहाँ पर विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि लखनऊ उस समय भारत के कुछ चुनिन्दा प्रमुख नगरों में से एक था और एक मोटे अनुमान के अनुसार इस नगर की आबादी लगभग 7 लाख थी। यदि वास्तव में यह एक जन विद्रोह का रूप धारण करती तो अंग्रेज़ों का बच पाना बहुत कठिन हो जाता पर ऐसा किन्ही कारणों से सम्भव नहीं हो सका।

यह भी कहा जाता है कि नवाब वाजिद अली शाह के लखनऊ से कलकत्ते चले जाने के बाद बहुत से लोग जो उन पर आश्रित थे फ़ाकामास्त हो गये। पंडित टीकाराम दर का आग़ामीर की डयोढ़ी में एक परिवारिक छापाखाना था जहाँ नवाब के सरकारी फ़रमाना, पुस्तकें तथा तिलिस्म अख़बार छपता था पंडित टीकाराम दर अंग्रेज़ों द्वारा नवाब को दर बदर करने से इतने दुःखी और खिन्न हुए कि उन्होंने गोमती नदी की मध्यधारा में एक बड़ी नाव पर चलायमान छापाखाना स्थापित कर दिया जिस पर अंग्रेज़ों के विरूद्ध पर्चो छापवाकर सारे नगर में वितरित किये जाते थे और जब अंग्रेज़ों के आने की तनिक भी भनक लगती थी तो नाव को आगे बढ़ा दिया जाता था। यह उस समय का एक प्रकार से अनूठा भूमिगत आन्दोलन था जिस चिंगारी ने बाद में एक विद्रोह का रूप ले लिया।

अब यही एक बहुत बड़ा प्रश्न है कि नवाब वाजिद अली शाह द्वारा 7 फरवरी 1856 को गद्‌दी छोड़ने और जनता द्वारा 30 मई 1857 को अंग्रेज़ों के विरूद्ध विद्रोह करने के मध्य के अन्तराल में लखनऊ में क्या हुआ। यह एक बहुत बड़ा रहस्य है जिस पर अभी भी पर्दा पड़ा हुआ है। मेरे पूर्वज पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा जो फ़ारसी भाषा के विद्वान थे और जिनको अंग्रेज़ी भाषा का भी अच्छा खासा व्यवहारिक ज्ञान था नवाब वाजिद अली शाह की माँ मलका किश्वर के खास मुशीरकार थे। पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा मलका किश्वर के गोपनीय संदेश लेकर कम्पनी के आला अधिकारियों से भेंट करने के लिये अक्सर कलकत्ता जाया करते थे और इस नाते उन्हें थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी बोलने और समझने का अभ्यास हो गया था। आप नवाब वाजिद अली शाह के उर्दू तथा फ़ारसी भाषा के शिक्षक भी रहे।

मलका किश्वर ने उनसे गुप्त मंत्रणा कर यह निश्चय किया कि एक प्रतिनिधिमण्डल लन्दन जाकर महारानी विक्टोरिया के सम्मुख अपना पक्ष प्रस्तुत करे और किसी प्रकार लानत मलामत तथा महारानी का मालीदन करके

नवाब वाजिद अली शाह को या फिर उनके पुत्र को अवध का राज सिंहासन वापस दिलाया जाये मलका किश्वर के नेतृत्व में 110 सदस्यों का यह प्रतिनिधिमण्डल 15 जून सन् 1856 को पानी के जहाज़ से लन्दन के लिये रवाना हुआ जिसके मुख्य सदस्य थे पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा, मसीउद्दीन खान, मुन्शी मीर मुहम्मद सफ़ी, हाजीउल रहमान और नवाब वाजिद अली शाह के ख़ास शहज़ादे मिर्ज़ा मुहम्मद हामिद अली। जब यह प्रतिनिधिमण्डल लन्दन में अपने कार्य में जुटा हुआ था तो वहाँ कलकत्ते में सिपाहियों द्वारा विद्रोह किये जाने की सूचना पहुँची जिससे क्रोध में आकर महारानी विक्टोरिया ने इस प्रतिनिधिमण्डल से मिलने से एकदम मना कर दिया। निराश होकर यह प्रतिनिधिमण्डल लन्दन से भारत लौट आया। वापसी में फ्रांस में मलका किश्वर का लगभग 55 वर्ष की आयु में निधन हो गया और उनको पेरिस में दो गज़ ज़मीन लेकर दफ़न कर दिया गया।

पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा लखनऊ वापस सकुशल लौट आये पर उनका शाही वसीका अंग्रेज़ों ने बन्द कर दिया जो पुनः सन् 1859 में लखनऊ के तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट मि. कार्नेगी के आदेश पर चालू हो सका। यहाँ पर सुधी पाठकों को इस बात की विस्तार से समीक्षा करनी चाहिये कि जिस समय अंग्रेज़ों ने नवाब वाजिद अली शाह उनकी शाही बेगमों तथा उनके शाही परिवार के अन्य सदस्यों को लखनऊ से कलकत्ता रवाना किया बेगम हज़रत महल कहाँ थीं और उनको अंग्रेज़ों ने लखनऊ में किस लिये छोड़ दिया था जबकि नवाब वाजिद अली शाह के अनेक दरबारी भी अपनी वफ़ादारी दिखाने के लिये उनके साथ कलकत्ता चले गये थे। जिनमें कुछ कश्मीरी पंडित भी शामिल थे जो अपने परिजनों को कश्मीरी मुहल्ले में राम भरोसे छोड़कर नवाब के ग़म में कलकत्ता चले गये जहाँ बाद में इन लोगों ने वहाँ तवायफ़ों से शादियाँ करके अपने घर बसा लिये।

यहाँ पर यह बताना अनुचित न होगा कि कुछ कश्मीरी पंडितों ने अपनी तर्ज़ पर अंग्रेज़ों के विरूद्ध मोर्चा खोला जिनमें पंडित बंसीधर शर्ग़ा भी शामिल थे पर वह किन्हीं कारणों से अपने उद्देश्य में बहुत अधिक सफल नहीं हो पाये। पंडित बंसीधर शर्ग़ा के पुत्र पंडित बैजनाथ शर्ग़ा को विवश होकर लखनऊ छोड़कर जयपुर के शासक महाराजा माधो सिंह के दरबार में शरण लेनी पड़ी जिन्होंने पंडित बैजनाथ शर्ग़ा को सवाई गंगा नगर का नाज़िम बना

दिया वहीं कुछ कश्मीरी पंडितों को अंग्रेज़ों ने प्रलोभन देकर अपनी ओर कर लिया जो बाद में उनके वफ़ादार बन गये। दिल्ली के कोतवाल पंडित गंगाधर नेहरू तथा पंडित केदारनाथ कुँजरु अपने परिवारों सहित पलायन करके आगरा आ गये। पंडित साहिब राम नेहरू का परिवार अम्बाला जाकर बस गया। पंडित रामकृष्ण हाक्सर एक अंग्रेज़ सार्जेंट की गोली का शिकार होकर शहीद हो गये। उनके चचरे भाई पंडित विशन नरायण हाक्सर ने अपने परिवार सहित ग्वालियर रियासत में शरण ली। कुछ कश्मीरी पंडित पास की अन्य रियासतों में चले गये।

अंग्रेज़ों ने लखनऊ में भी जमकर लूटपाट की और अनेक नवाबी महलों को ध्वस्त किया। एक मोटे अनुमान के अनुसार नवाब वाजिद अली शाह के 87 हज़ार मुलाज़िम, 14 हज़ार शार्गिद पेशा, 52 बटालियनों के सैनिक और अफसर, 3500 घुड़सवार और लगभग 2 हज़ार सैनिकों जिनमें कश्मीरी पंडित भी शामिल थे को भूखों मरने की नौबत आ गयी थी। इनमें कुछ ने अंग्रेज़ों के विरूद्ध मोर्चा भी खोला पर उनको बहुत अधिक सफ़लता नहीं मिली। पंडित प्राननाथ रैना, ग्वालियर, पंडित गुलाब राय तैमनी, वहावलपुर, पंडित कालका प्रसाद सुखिया, मुरादाबाद, पंडित दया कृष्ण हांगल, पेशावर, पंडित श्रीराम तैमनी, लाहौर, पंडित कन्हैयालाल सिंह कौल, हरदोई, पंडित सूरज नारायण हरकौली, सीतापुर तथा पंडित भोलानाथ कॉव के वंशज बनारस चले गये।

क्या बेगम हज़रत महल और नवाब वाजिद अली शाह के मध्य सम्बन्धों में इतनी खटास आ चुकी थी कि उन्होंने बेगम हज़रत महल को अपने साथ कलकत्ता ले जाना उचित नहीं समझा। ऐसा भी कहा जाता है कि बेगम हज़रत महल के सम्बन्ध महल के दरोग़ा मम्मू खाँ से हो गये थे और बिरजीज़ कद्र उन्हीं का पुत्र था। पर इसका कोई पुख़्ता प्रमाण नहीं है क्योंकि उस समय डी.एन.ए. टेस्ट कराने की सुविधा उपलब्ध नहीं थी और परीखाने के उन्मुक्त तथा स्वछन्द वातावरण में 365 बेगमों में कौन कब किसके साथ सम्बन्ध बना रही है यह पता कर पाना बहुत कठिन था। उस ज़माने के लबड़–झबड़ के माहौल में किसी तवायफ़ का किसी दरबारी के साथ हमबिस्तर होना बड़े फ़क्र की बात मानी जाती थी। लखनऊ में बहुत सी मशहूर तवायफ़ें थीं जिनको बाद में इसी प्रकार बेगम का दर्जा हासिल हुआ और समाज में इज़्ज़त मिली। नवाब वाजिद अली शाह ने स्वयं अपनी पुस्तक परीखाना में इसकी बड़ी साफ़गोई के साथ चर्चा की है।

वास्तव में बहुत कम लोग यह जानते हैं कि बेगम हज़रत महल नेपाली मूल की एक राजपूत महिला थी जिनका जन्म सन् 1830 के आसपास हुआ था और जिनको काठमांडू से लखनऊ में वेश्यावृत्ति कराने के उद्देश्य से सन् 1844 में लाकर मन्सूरनगर के एक मकान में रखा गया था क्योंकि वहीं से थोड़ी दूर पर चावल वाली गली और चौक के बाज़ार में लखनऊ की मशहूर तवायफ़ों के आलीशान कोठे थे। जहाँ नित्य सायंकाल हुस्न और शबाब की महफ़िलें जमती थीं और चाटुकार नवाब को खुश करने तथा इनाम आदि पाने के चक्कर में नगर की सुन्दर बालाओं को महल में पहुँचाते थे। इसी क्रम में इस राजपूत बाला को भी कैसरबाग के परी महल में सन् 1847 में पहुँचा दिया गया। जहाँ नवाब वाजिद अली शाह ने उसके गठे हुए सुडौल शरीर, हुस्न और शबाब पर मोहित होकर उनको बेगम हज़रत महल के ख़िताब से नवाज़ा।

नवाब वाजिद अली शाह

सब जानते है कि प्राचीन समय से भारत के विभिन्न नगरों में देहव्यापार के लिये नेपाल से हिन्दू बालाओं को लाया जाता रहा है जो क्रम आज भी जारी है। इन असहाय बालाओं के पुनर्वास के लिये कई गैरसरकारी संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है और जिसमें नेपाली मूल की प्रसिद्ध अभिनेत्री मनीषा कोईराला भी एक प्रमुख भूमिका निभा रही है। वहीं दूसरी ओर इस धन्धे में भूतपूर्व सोवियत संघ के कुछ गणराज्यों की बालाये भी अपने हाथ जमकर अज़मा रही हैं। प्रायः 1857 की क्रान्ति की शुरूआत 10 मई को मेरठ से मानी जाती है और मंगल पांडेय को इस क्रान्ति का नायक बताया जाता है। पर प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता आमीर खान ने कई वर्ष शोध और अनुसंधान करने के पश्चात मंगल पांडेय के जीवन चरित्र पर जब फिल्म का निर्माण किया तो वह बुरी तरह से पिट गयी और जनता ने उसे एकदम नकार दिया क्योंकि उसमें मंगल पांडेय को एक तवायफ़ के साथ संगत करते चित्रित किया गया है यही नहीं मंगल पांडेय के जन्म स्थान के बारे में भी मतभेद है। जबकि यह

सब जानते है कि फ़ौजी प्राचीन काल से अपना मानसिक तनाव दूर करने तथा अपने शरीर की थकावट को मिटाने के लिये तवायफ़ों का सहारा लेते रहे है।

ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार मंगल पांडेय ने मुख्य रूप से बैरकपुर छावनी में अपने धर्म की रक्षा के लिये विद्रोह किया था। जब दो अंग्रेज़ सेना अधिकारियों सर्जेंट मेजर हुईसन और लेफटिनन्ट बाग़ ने उसको अपने कब्ज़े में लेने की कोशिश की तो मंगल पांडेय ने उनको अपनी बन्दूक में लगी संगीन से घायल कर दिया। उसको किसी तरह बाद में पैंतरेबाजी से प्रेसीडेन्सी डिवीज़न के कमान्डिग आफ़िसर जनरल हियरसे ने अपने कब्ज़े में लिया यह घटना 29 मार्च 1857 को घटित हुई और मंगल पांडेय पर तुरन्त मुकदमा चलाकर अंग्रेज़ों ने उसको 8 अप्रैल 1857 को छावनी के पीपल के पेड़ से लटका कर फाँसी दे दी। मंगल पांडेय 34वीं बंगाल नेटिव रेजीमेन्ट का सैनिक था जिसका नम्बर 1446 था।

ब्रिटिश शासन काल में जब चौक में मुजरों की महफिले सजती थीं तो अनेक फ़ौजियों को शाम के समय चौक की गलियों में घूमते और वहाँ तवायफ़ों के कोठों पर चढ़ते और फ़ारिंग होने के बाद उतरते देखा जा सकता था। वहीं कई इतिहासकार मंगल पांडे के स्थान पर बिन्दा तिवारी नामक सिपाही को स्वतंत्रता संग्राम का पहला नायक मानते है। कनाईपाढ़ा राय के अनुसार बिन्दा तिवारी बैरकपुर की 47वीं नेटिव इन्फैन्ट्री के सैनिक थे, जिन्होंने सन् 1824 में अंग्रेज़ों के विरूद्ध विद्रोह किया और कई अंग्रेज़ फ़ौजी अफसरों को मौत के घाट उतार दिया। उनको बाद में अंग्रेज़ों ने पकड़ कर पेड़ से लटका कर फाँसी दे दी थी।

बेगम हजरत महल

बैरकपुर की छावनी में बिन्दा तिवारी के स्मारक के रूप में बना हुआ मन्दिर आज भी वहाँ स्थित है। 1857 की क्रान्ति को भलीभाँति समझने के लिये हमे कुछ इससे जुड़ी ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार मंथन करना होगा जैसे सन् 1824 में 47वीं बंगाल पैदल सेना की टुकड़ी ने

बर्मा जाने से मना कर दिया था। जिसमें उनको समुद्र की यात्रा करनी थी जो उनकी धार्मिक मान्यताओं के एकदम विरूद्ध थी, क्योंकि उस समय सेना में अधिकतर राजपूत और ब्राह्मण भर्ती हुआ करते थे। सन् 1856 में जो नयी एनफील्ड राइफिल प्रयोग में लाई गयी उसमें भरी जाने वाली गोली के खोखे पर चिकनाई लगाई गयी थी। ताकि वह आसानी से बन्दूक की नली में जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह चिकनाई गाय और सुअर की चर्बी होती थी। जिसे मुँह से फाड़ना पड़ता था जिसने वास्तव में भारतीय सैनिकों को अंग्रेज़ों के विरूद्ध विद्रोह करने को उकसाया।

वहीं यह भी बहुत आश्चर्य की बात है कि हमारे देश के इतिहासकारों ने दक्षिण भारत में भारतीय सैनिकों द्वारा वैलूर फ़ोर्ट में 10 जुलाई 1806 को किये गये विद्रोह का कहीं कोई ज़िक्र नहीं किया। 14वीं सदी के इस किले में भारतीय सैनिकों ने प्रातः पौ फटते ही धावा बोलकर 14 अंग्रेज़ फ़ौजी अफसरों तथा 100 अंग्रेज़ सैनिकों को हलाक कर दिया था जिसमें वहाँ किले में नज़रबन्द टीपू सुल्तान के तीन पुत्रों ने भी साथ दिया था। जिसको कुचलने के लिये अंग्रेज़ों को अरकाट से ब्रिटिश सेना की टुकड़ियाँ बुलानी पड़ी थी और जिसमें 350 भारतीय सैनिक शहीद हुए थे और मद्रास प्रेसीडेन्सी के तत्कालीन गर्वनर विलियम बेन्टिग को अंग्रेज़ों को इंग्लैण्ड वापस बुलाना पड़ा था।

पी.जी.ओ. टेलर, माईकिल एडवर्ड व हर प्रसाद चटोपाध्याय का कहना है कि क्रान्ति की शुरूआत 10 मई को मेरठ में नहीं परन्तु 3 मई 1857 को लखनऊ में हुई जब अवध के चीफ कमिश्नर सर हेनरी लारेंस के पास एक पत्र लाया गया जो सातवीं रेजीमेन्ट के एक सैनिक ने 48वीं स्थानीय सेना को लिखा था जिसमें धर्म की रक्षा के लिये कुछ भी कुर्बानी देने के लिये तैयार रहने को कहा गया था। सर हेनरी लारेन्स के यह पत्र पढ़ने के बाद एकदम होश फ़ाख़्ता हो गये और वह तुरन्त घबराकर मड़ियांव में स्थित सैनिक छावनी पहुँचे जहाँ उन्होंने सैनिकों से तुरन्त अपने हथियार डालने को कहा।

जब वहाँ से सर हेनरी लारेन्स वापस लौटे तो यह अफवाह फैल गयी कि उन्होंने 14 सैनिकों को फाँसी दे दी है तब आठवीं घुड़सवार पलटन के कुछ सैनिकों ने इसका बदला लेने की योजना बनाई। जब कैप्टन पार्कसन परेड की सलामी लेने के लिये गया तो गंगादीन नाम का एक पासी सैनिक जो अचूक निशानेबाज़ था अपनी टुकड़ी से निकला और पार्कसन पर गोली दाग़ दीं।

पार्कसन गोली लगने से ज़ख्मी हो गया और उसने अपने बचाव में तलवार निकाल ली पर इसी बीच कई सैनिक उस पर टूट पड़े और उसका काम तमाम कर दिया। अंग्रेज़ों ने इस घटना के लिये 20 भारतीय सैनिको को पकड़ा और उन्हें फाँसी दे दी गयी। यहीं से अवध में क्रान्ति का बिगुल बजा पर कुशल नेतृत्व के अभाव में इसका संचालन ठीक प्रकार से सम्भव नहीं हो सका।

नगर में व्याप्त इस ऊहापोह की स्थिति में बेगम हज़रत महल ने कुछ अपने राजपूत वफ़ादार सिपाहसालारों के साथ कैसरबाग में स्थित चौलक्खी कोठी में एक गुप्त मंत्रणा की जिनमें राजा मान सिंह, राजा बेनी माधो तथा राजा जियालाल सिंह ने प्रमुख भूमिका निभायी जिनको तिलक लगाकर और हाथ में नंगी तलवार उठाकर जयभवानी के उद्घोष के साथ बेगम हज़रत महल ने मृत्यु तक अंग्रेज़ों के विरूद्ध लोहा लेने की शपथ दिलाई तथा नेतृत्व के शून्य को भरने के लिये अपने 8 वर्ष के नाबालिग़ पुत्र बिरजीज़ कद्र को अवध का बादशाह घोषित कर दिया तथा शासन की कमान अपने हाथो में ले ली। एक विशेष बात यह रही कि यह क्रान्ति उत्तर भारत के कुछ प्रमुख नगरों तक ही सीमित रही और मध्य तथा दक्षिण भारत पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि सूचना प्रोद्योगिकी के अभाव में कौन कहाँ क्या कर रहा है इसकी ठीक से जानकारी नहीं मिल पाती थी। जब बेगम हज़रत महल को अपनी पराजय सुनिश्चित लगने लगी तो उन्होंने सुलह–सफाई के लिये राजा मान सिंह को जनरल आउट्रम के पास अपना दूत बनाकर भेजा पर जनरल आउट्रम ने उनके प्रस्ताव को एक सिरे से ख़ाजिर कर दिया जिसके बाद बेगम हज़रत महल अपने पुत्र बिरजीज़ कद्र के साथ बहराईच होते हुए अपने मायके नेपाल सन् 1860 में पलायन कर गयी जहाँ उनकी काठमांडू में क्षय रोग से ग्रसित हो जाने के कारण 7 अप्रैल सन् 1879 को 49 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। नेपाल नरेश सुरेन्द्र विक्रम शाह (1847–1881) ने उनको नेपाली नागरिक होने के नाते 100 रुपये माहवार पेंशन बांध दी थी।

अंग्रेज़ इस क्रान्ति को बड़ी आसानी से कुचलने में इसलिये भी अधिक सफ़ल हुए कि हमारे देश के ही अनेक राजाओं, महाराजाओं, नवाबों, मनसबदारों, ताल्लुकदारों तथा बड़े जमींदारों ने उनका खुलकर साथ दिया जो अपने–अपने

हित साधने में लगे हुए थे। यह साफ़ दर्शाता है कि भारत उस समय दो खेमों में बंटा हुआ था। तब इस क्रान्ति को स्वतंत्रता संग्राम कहना कहाँ तक उचित हैं जैसा कभी–कभी पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ़ कश्मीर के सम्बन्ध में हल्के मूड में कह देते है। क्या नक्सली आन्दोलन या उत्तर पूर्वी राज्यों के उग्र जन आक्रोश को इसी कसौटी पर कसा जा सकता है। इतने बड़े विशाल देश में यदि उसके किसी क्षेत्र में कुछ लोग आवेग में आकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये बवाल काटने लगे तो उसको स्वतंत्रता संग्राम कहना कहाँ तक उचित और न्यायसंगत है।

वास्तव में 1858 में भारत में पूर्ण रूप से ब्रिटिश शासन स्थापित होने के पश्चात भारतवासियों ने उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये जब इंग्लैण्ड जाना प्रारम्भ किया तब उनमें राष्ट्र, समाज और नागरिक अधिकार क्या होते है इसकी कल्पना जागृत हुई। अपने अधिकारों की रक्षा के लिये सर्वप्रथम सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इंग्लैण्ड से स्नातक की उपाधि प्राप्त किये हुए 72 भारतवासियों को लेकर एक संस्था बनाई जिसके माध्यम से अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियों के विरूद्ध लड़ाई लड़ने की कार्य योजना बनी और बाल गंगाधर तिलक जैसे व्यक्ति ने स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है जैसा नारा दिया तथा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने युवकों को आवाहन करते हुए कहा तुम मुझे खून दो मैं तुमको आजादी दूँगा।

भारत के महान वीर सपूत विनायक दामोदर सावरकर जिनका जन्म 28 मई सन् 1883 को नासिक के निकट भागपुर गाँव में हुआ था पूना के फर्गूसन कालेज से स्नातक की उपाधि लेने के पश्चात सन् 1906 में कानून की शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड गये जहाँ उन्होंने ग्रे इन में प्रवेश लिया। वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सन् 1907 में लन्दन में प्रथम बार 1857 की क्रान्ति की 50वीं वर्षगांठ मनायी और उसको देश का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जिसने समूचे ब्रिटिश साम्राज्य में सनसनी फैला दी। उन्होंने अंग्रेज़ी में “फ़र्स्ट इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल” शीर्षक से एक किताब भी प्रकाशित कराई जिसकों अंग्रेज़ों ने जब्त कर लिया। विनायक दामोदर सावरकर पर अंग्रेज़ों ने देशद्रोह का मुकदमा चलाया और उनको काले पानी की सजा सुनाकर अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में बने सैल्यूलर जेल में बन्द कर दिया।

सावरकर को 13 मार्च 1910 को लन्दन के विक्टोरिया रेलवे स्टेशन से गिरफ़्तार किया गया और जब उनको पानी के जहाज से भारत लाया जा रहा था तो वह जहाज के शौचालय के छेद से निकल भागे और ब्रिटिश चैनल को तैरते हुए फ्रांस पहुँच गये जहाँ कि पुलिस की मदद से सन् 1911 में उनको पुनः गिरफ़्तार करके बम्बई लाया गया पर इस घटना ने उन्हें भारत के युवाओं की आँखों का तारा तथा भारत की युवा शक्ति का प्रेरणा स्रोत बना दिया।

1857 की क्रान्ति को स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा देने के पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क और कुतर्क दिये जा सकते है पर यह कटु सत्य है कि इससे पूर्व इस प्रकार की बात कहने का साहस कोई नहीं जुटा सका। अब इस क्रान्ति के लगभग 150 वर्ष पश्चात देश के इतिहासकारों में पुनः इसको लेकर बहस छिड़ गयी है और वह अपनी–अपनी विचारधारा के अनुसार इसकी व्याख्या करने में जुट गये है। इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर शोध करने की आवश्यकता है ताकि जनता के सम्मुख इसको सही परिप्रेक्ष्य में बिना किसी लाग–लपेट के प्रस्तुत किया जा सके।

हम अपने इतिहास के प्रति कितने सजग है इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि देश के सन् 1947 में स्वतंत्र होने के पश्चात लखनऊ का गज़ेटियर 1956–1957 में प्रकाशित हुआ था तब से आज तक इसे पुनः प्रकाशित करने की किसी ने आवश्यकता नहीं समझी। हम आज तक यह नहीं पता लगा पाये कि आखिर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस कहाँ गायब हो गये। क्या उन्हें आसमान निगल गया या धरती खा गयी। मौके का फायदा उठाकर कुछ फर्जी लोग स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बन बैठे जबकि वास्तव में उनका स्वतंत्रता संग्राम से कभी दूर–दूर तक कोई लेना–देना नहीं रहा।

इसी प्रकार फतेहपुर जनपद में खजुआ से लगभग 4 किमी दूर मुग़ल रोड के किनारे स्थित इमली के पेड़ पर आज से ठीक 148 वर्ष पूर्व 28 अप्रैल सन् 1858 को ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध छापामार युद्ध लड़ने वाले ठाकुर जोधा सिंह अटईया व उनके 51 साथियों को मिस्टर ग्वीइन ने फाँसी पर लटका दिया था। बर्बरता की चरम सीमा यह रही कि सभी 52 शवों का अन्तिम संस्कार करना तो दूर उन्हें पेड़ से उतारा भी नहीं गया।

आज तक किसी ने इन अमर शहीदों के नाम व पता भी जानने की तकलीफ़ गवारा नहीं की वहीं सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अब कुछ फर्जी

1857 की क्रान्ति का एक विहंगम दृश्य

लोगों को उनके भव्य स्मारक निर्माण कराकर न केवल उनको महिमा मण्डित किया जा रहा है अपितु आने वाली पीढ़ियों को इतिहास के प्रति गुमराह भी किया जा रहा है। किसी शायर ने ठीक ही लिखा है।

इन रास्तों पर भीड़ है मंजिल नहीं पता,
खुद अपनी राह बना कर तो देखिये।
धरती यह चूम लेगी आसमां एक दिन,
इस स्वप्न को आँखों में बसा कर तो देखिये।

कश्मीरी पंडित और जाति व्यवस्था

प्रायः यह प्रश्न किया जाता है कि क्या कश्मीरी हिन्दुओं में केवल ब्राह्मण ही होते हैं अन्य जातियाँ क्यों नहीं जैसी हिन्दू समाज की संरचना हम भारत के अन्य प्रदेशों में पाते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि आज तक इस गम्भीर विषय पर किसी भी इतिहासकार या मानव विज्ञान शास्त्री ने कोई मौलिक शोध कार्य नहीं किया। जिसको आधार मानकर वैज्ञानिक दृष्टि से इसका व्यापक विश्लेषण किया जा सके, स्वाभाविक रूप से कोई ठोस प्रामाणिक स्रोत के अभाव में हमे विवश होकर इसका उचित उत्तर ढूँढने के लिये अपने प्राचीन धर्म ग्रन्थों का सहारा लेने को बाध्य होना पड़ता है।

ऐसी मान्यता है कि वैदिक काल में कश्मीरी पंडितों के पूर्वज सरस्वती नदी के तटों पर निवास करते थे जो तिब्बत में स्थित मानसरोवर झील से निकल कर कश्मीर की पीर पजांल पर्वत श्रृंखला को पार कर पंजाब तथा राजस्थान के क्षेत्रों से होती हुई अरब सागर में जाकर गिरती थी। वैदिक काल की यह सरस्वती नदी लगभग 3050–3000 वर्ष ईसा से पूर्व पृथ्वी पर किसी विशाल भूमण्डलीय परिवर्तन आ जाने के कारण लुप्त हो गयी और उसके दोनों तटों पर बसे कश्मीरी पंडितों के पूर्वज वहाँ से पलायन कर कश्मीर घाटी में जाकर बस गये और इसी नाते वह अपने को सारस्वत ब्राह्मण कहने लगे। अब यहाँ पुनः स्वभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या इस वैदिक काल की सरस्वती नदी के तटों पर केवल ब्राह्मण ही निवास करते थे या फिर अन्य जातियाँ भी निवास करती थीं और यदि अन्य जातियाँ भी निवास करती थीं तो वह जातियाँ कौन थीं और वह सरस्वती नदी के लुप्त हो जाने के पश्चात कहाँ चली गयीं।

वैदिक काल में इस सरस्वती नदी के तटों पर बसे हुए ब्राह्मणों ने जो अपने को आर्य जाति का वंशज मानते थे, प्रारम्भ में अपने को सात महान ऋषियों कश्यप, भरद्वाज, दत्तात्रेय, गौतम, विश्वामित्र, अत्रि मुनि तथा वशिष्ठ की सन्तान माना जिसके आधार पर उनमें गोत्र का चलन प्रारम्भ हुआ। इन्हीं सप्तऋषियों को आधार मानकर सप्तऋषि पंचाग की गणना प्रारम्भ हुई जिसके

अनुसार यह घटना आज से लगभग 5081 वर्ष पूर्व घटित हुई। पर इन सप्त ऋषियों की जातियाँ जिनको कश्मीरी पंडित अपना पूर्वज मानते हैं, वास्तव में क्या थीं इस पर अभी तक किसी ने मौलिक शोध कार्य नहीं किया है क्योंकि हिन्दुओं की मान्यता के अनुसार साधु–संत की कोई जाति नहीं होती। वह इस जात–पात के बन्धन से मुक्त होते हैं।

यह सर्वविदित है कि आज से लगभग 50,000 वर्ष पूर्व कश्मीर घाटी दक्षिण मध्य एशिया में विशाल पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी हुई सतीसर नाम की एक बड़ी झील थी जो उस क्षेत्र में तिब्बत के पठारों के निकट मानसरोवर झील के पश्चात सबसे बड़ी झील थी जहाँ पर उस समय किसी प्रकार की कोई आबादी नहीं थी। इसी मानसरोवर झील के निकट कैलाश पर्वत पर भगवान शिव का निवास था जो इस झील का पानी अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये प्रयोग करते थे पर उनकी अर्धांगिनी के रूप में सती के आ जाने के पश्चात यह समस्या उत्पन्न हुई कि वह अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिये किस जल का प्रयोग करें। भगवान शिव ने तब इस समस्या के समाधान के लिये नन्दी पर बैठकर हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं का भ्रमण किया और सती के लिये इस झील का चयन किया। जिस सरोवर को उनके नाम पर सतीसर कहा जाने लगा। उस काल खण्ड में असुर और पिशाच जातियाँ इस सरोवर के चारों ओर पर्वत श्रृंखलाओं पर निवास करती थीं। उन जातियों से देवी सती की रक्षा के लिये भगवान शिव ने अपने गले में लिपटे हुए नाग को भेजा। यह इच्छाधारी नाग मनुष्य के रूप में देवी सती की रक्षा के लिये रहने लगा। जिसके वंशज नाग जाति के लोग कहलाने लगे जो कश्मीर की प्राचीनतम जातियों में से एक थी। इस कश्मीर की प्राचीनतम नाग जाति के वंशज कालान्तर में ब्राह्मणों की परम्पराओं को स्वीकार करने के पश्चात अपना कुलनाम नागू लिखने लगे। सन् 1850 के आसपास पंडित जगत राम नागू लखनऊ के कश्मीरी मोहल्ले में रहते थे। अब भी इस नागू परिवार के वंशज लखनऊ, हरदोई, भोपाल, नरसिंहपुर, देहरादून तथा दिल्ली में रह रहे हैं।

ऐसी मान्यता है कि महाभारत के युग में इस प्राचीन नाग जाति का वर्चस्व कश्मीर से लेकर दिल्ली तक था। पाँचों पांडव पुत्रों की मृत्यु के उपरान्त अभिमन्यु पुत्र राजा परिक्षित का जन्म हुआ था जो हस्तिनापुर का शासक बना। राजा परिक्षित ने जब सिंहासन पर बैठते समय पाप से अभिशप्त मुकुट धारण

किया तो उसकी बुद्धि एकदम भ्रष्ट हो गयीं और शिकार करते समय अहंकार में वह अपनी प्यास बुझाने के लिये पानी न मिलने के कारण ऋषि समीप के गले में एक मरा हुआ सर्प डाल देते हैं। उनके इस कृत्य से ऋषि पुत्र ऋणि उन्हें सात दिन के भीतर तक्षक द्वारा काटने का शाप देते हैं। इस घटना के पश्चात राजा परिक्षित के पुत्र जनमेजय तथा नाग जाति के मध्य दिल्ली के समीप एक भयंकर युद्ध होता है जिसमें नाग जाति को पराजय का मुँह देखना पड़ता है और वह पलायन कर मध्य भारत में जाकर बस जाती हैं जो स्थान अब उन्हीं के नाम पर नागपुर तथा छोटा नागपुर कहलाते हैं जो महाराष्ट्र का एक भाग हैं।

प्रायः यह भी कहा जाता है कि इस सतीसर में जलोद्भव नाम का एक दैत्य रहता था जो ऋषियों और मुनियों की तपस्या में विघ्न डालता था और उसका वध करने के उद्देश्य से कश्यप मुनि ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करते हुए पहाड़ों की इस झील को चारों ओर से घेरे हुए श्रृंखला में बारामूला के निकट चट्टानों को भेदकर इसके जल को निकाल दिया और इस प्रकार जो पर्वतों के मध्य समतल भूमि प्राप्त हुई उस पर उन्होंने अपनी इच्छानुसार गुणी व्यक्तियों को लाकर बसाया। यह गुणी तथा विद्वान व्यक्ति किस जाति के थे और किस काल खण्ड में कश्यप मुनि द्वारा पृथ्वी के किन–किन क्षेत्रों से कश्मीर घाटी में लाकर बसाये गये। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक शोध कार्य उपलब्ध नहीं है।

कल्हण पंडित की राजतरंगणी को कश्मीर के इतिहास का प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। कल्हण पंडित ने अपनी राजतरंगणी में कश्मीर की प्राचीन जातियों का विस्तार से उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि जो जातियाँ महाभारत, पुराणों तथा रामायण में अलौकिक मालूम होती हैं वे वास्तव में मानव जातियाँ थीं जैसे यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध गुड़यक, शवर, किरात इत्यादि। यहाँ पर सुधी पाठकों को यह ध्यान देना आवश्यक है कि जो क्षेत्र आज अफ़गानिस्तान के नाम से जाना जाता है वह महाभारत के काल खण्ड में भारत का अंग था और कुछ विद्वानों का मत है कि महाभारत का युद्ध हिन्दू कुश पर्वत श्रृंखलाओं के क्षेत्र में हुआ था और उस काल खण्ड में अनेक जातियाँ युद्ध से भयभीत होकर वहाँ से पलायन करके कश्मीर में आकर बस गयीं थीं यदि हम कश्मीरी पंडितों के कुलनामों को गम्भीरता से अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि उनके अनेक कुलनाम ऐसे हैं जिन नामों के स्थान या नगर

अब अफ़गानिस्तान में स्थित है जो इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि उनके पूर्वज महाभारत के काल खण्ड में उस क्षेत्र से पलायन करके कश्मीर घाटी में आकर बसे धृतराष्ट्र की पत्नी गन्धारी, आजकल के कंधार प्रदेश की थीं। वैसे भी यक्ष कुलनाम कश्मीरी पंडितों में विद्यमान है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में पंडित राम नाथ यक्ष के पूर्वज लखनऊ के कश्मीरी मोहल्ले में तथा पंडित कैलाश नाथ यक्ष के पूर्वज लाहौर की वच्छूवाली में रहते थे। कल्हण पंडित ने प्राचीन कश्मीर की किरात जाति का वर्णन किया है। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव प्रकाश करात हैं। हो सकता है कि वह उसी प्राचीन महाभारत काल खण्ड की किरात जाति के वंशज हों। यह किरात जाति वास्तव में पर्वतों पर रहने वाली एक जाति थी। जो अपना भरण–पोषण कन्दमूल खाकर करती थी।

यहाँ पर मुख्य रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि जब कभी भी पृथ्वी के किसी भू भाग को युद्ध की विभीषिका झेलने को बाध्य होना पड़ता है या फिर उस क्षेत्र को किसी प्राकृतिक प्रकोप या आपदा का सामना करना पड़ता है तो उस क्षेत्र के निवासी जीवनयापन के संसाधन जुटाने के लिये और एक अमन चैन के वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करने के उद्‌देश्य से अन्य सुरक्षित स्थानों को पलायन करते हैं और इस प्रकार आबादी का एक स्थान से दूसरे पर स्थानान्तरण होता है। कुछ इसी प्रकार के वातावरण का निर्माण महाभारत के काल खण्ड में हुआ जब अफ़गानिस्तान तथा भूतपूर्व सोवियत संघ के अनेक गणराज्यों की विभिन्न क़ौमें और जातियाँ कश्मीर की घाटी में आकर बसीं जो सारा भू भाग उस समय आर्यव्रत के नाम से जाना जाता था।

अब यदि हम रामायण के काल खण्ड का गहरायी के साथ अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि अयोध्या के राजा दशरथ की तीसरी पत्नी केकैयी कश्मीरी मूल की थीं। जिनके पूर्वज कोहेकाफ़ पर्वत श्रृंखला के रहने वाले थे जहाँ की स्त्रियाँ बहुत अधिक सुन्दर होती थीं वह बाद में कश्मीर घाटी में आकर बस गये थे। यह पर्वत श्रृंखला आजकल के ताशकन्द में स्थित है जो इस बात की पुष्टि करता है कि उस काल खण्ड में ताशकन्द क्षेत्र की अनेक जातियाँ कश्मीर घाटी में आकर बसीं। कुछ वर्ष पूर्व इस बात का खुलासा हुआ कि सम्राट अशोक के शासन काल से पूर्व अयोध्या की एक राजकुमारी का विवाह कोरिया के एक राजकुमार के साथ सम्पन्न हुआ था। हो सकता है कि विवाह के उपरान्त हनीमून के लिये वह लोग कश्मीर गये हों क्योंकि बहुत से

नव दम्पत्ति हनीमून के लिये अब भी कश्मीर जाना पसन्द करते हैं। यह स्पष्ट करता है कि हज़ारों वर्ष पूर्व कश्मीर और कोरिया का भी आपस में सम्बन्ध रहा है।

कश्मीर आदिकाल से शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र रहा है जहाँ विश्व का सबसे प्राचीनतम विश्वविद्यालय शारदा पीठ स्थित था। उस समय के संसार के अनेक देशों के विद्वान शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से कश्मीर आते थे। जिनमें से अनेक वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर वहाँ बस गये और शिक्षा के माध्यम से अपना जीवकोपार्जन करने लगे। मैंने कश्मीरी पंडितों के सामाजिक इतिहास को लिपिबद्ध करने के लिये जब सन् 1980 में अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया और उस सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण स्रोतों से दुर्लभ सामग्री एकत्रित करी तो मुझको यह जानकारी प्राप्त हुई कि शर्गा नाम का एक गाँव मंगोलिया में स्थित है और भूतपूर्व सोवियत संघ के कश्मीर की सीमा के निकट के कुछ गणराज्यों के निवासी अब भी अपना कुलनाम शर्गा लिखते हैं। इससे दो सम्भावनायें प्रतीत होती हैं एक तो यह कि शर्गा परिवार के पूर्वज या तो शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से उस काल खण्ड में मंगोलिया से आकर कश्मीर में बसे या फिर वह किसी काफ़िले का अंग थे। इस शर्गा परिवार के पूर्वज लम्बे चौड़े कद काठी वाले व्यक्ति थे जो कुशल घुड़सवार और तलवार भाँजने में निपुण थे जिन गुणों की वजह से वे दिल्ली की मुग़ल सेना तथा अवध की शाही सेना में उच्च पदों पर आसीन रहे जो इस बात को अधिक बल प्रदान करता है कि वह कदाचित उस नस्ल के थे जो युद्ध कौशल में उस समय पारंगत थी।

मैंने उसी वर्ष अपने परिजन पंडित कैलास नरायण बहादुर के साथ कश्मीर का व्यापक भ्रमण किया। उस समय पंडित कैलास नरायण बहादुर के सहपाठी आग़ा अशरफ़ अली वहाँ के शिक्षा निदेशक थे जिन्होंने हम लोगों को गुपकार रोड पर स्थित अपने आवास पर रात्रि भोज के लिये आमंत्रित किया। वहाँ उनकी पत्नी से परिचय हुआ जो कश्मीरी भाषा में बातचीत तो अवश्य कर रही थीं पर किसी भी तरह से कश्मीरी नहीं लग रही थीं। जब मैंने कौतूहल वश उनसे माता–पिता के बारे में प्रश्न किया तो उनका उत्तर था कि मैं बाराबंकी के किदवई परिवार की बेटी हूँ। यह सब क्या दर्शाता है। यह स्पष्ट संकेत देता है कि समय–समय पर देश के अन्य अंचलों से आकर लोग कश्मीर में बसे।

सम्राट अशोक के साम्राज्य की सीमायें कश्मीर से लेकर कालिंग तक फैली हुई थीं जो आजकल के उड़ीसा प्रदेश में स्थित हैं। उसका सेनापति चकुना एक चीनी मूल का व्यक्ति था। सम्राट अशोक ने ही श्रीनगर शहर की आधारशिला रखी थी। उसके शासन काल में देश के विभिन्न अंचलों से अनेक विद्वान, गुणी व्यक्ति, भावशिल्पी इत्यादि उसके राजदरबार में सम्मान पाने के लिये कश्मीर में जाकर बसे। उस समय न तो हमारा कोई संविधान था और न ही उसकी धारा 370 कश्मीर पर लागू थी। जिसके अन्तर्गत केवल एक धर्म विशेष के व्यक्तियों को ही कश्मीर में बसने की छूट हो। सम्राट अशोक के प्रभाव में उस समय कश्मीर बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केन्द्र बना और वहाँ के अधिकतर निवासी बौद्ध धर्म के अनुयायी बन गये। अनेक रोमन तथा ग्रीक इतिहासकारों ने अपने मौलिक ग्रन्थों तथा संस्मरणों में कश्मीर तथा श्रीनगर का कोत्सयारोंस नाम से उल्लेख किया है जो यह दर्शाता है कि उस समय रोम तथा ग्रीस के निवासी कश्मीर आया जाया करते थे क्योंकि वह रेशम के व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था और रेशम के व्यापारियों के काफ़िले चीन से रोम तक कश्मीर होकर आया जाया करते थे। वैसे भी अल्लामा इक़बाल ने बहुत पहले लिखा था कि चीन ओ–अरब हमारा.....।

आदि शंकराचार्य ने जब भारत में सनातन धर्म को पुनः स्थापित करने के उद्‌देश्य से अपने प्रबल समर्थकों के साथ केरल से लेकर कश्मीर तक की पद यात्रा की तो उनके प्रभाव में कश्मीर में रह रही अनेक जातियों और नस्लों के लोगों ने सनातन धर्म को अंगीकार कर लिया और उसकी विचारधारा में रम गये और कालान्तर में कश्मीरी पंडित कहलाने लगे। यहाँ पर यह भी बात विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है कि कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि प्रभु ईसा मसीह की मृत्यु सूली पर नहीं हुई थी अपितु उनकी मृत्यु कश्मीर में आकर हुई और श्रीनगर के ख़ानयार क्षेत्र में रोज़ा बल नाम के स्थान पर उनकी क़ब्र है। ऐसी भी धारणा है कि उसी काल खण्ड में कुछ यहूदी आदिम जातियाँ येरूशलम से पलायन करके कश्मीर में आकर बसीं और कश्मीरी पंडित उन्हीं आदिम जातियों के वंशज हैं।

यहाँ पर सुधी पाठकों को यह बताना अनुपयुक्त न होगा कि आजकल भी इसराईल के अनेक नवयुवक और नवयुवतियाँ वहाँ से पलायन करके भारत आ रहे है और वह हिमाचल प्रदेश में हिन्दू धर्म को स्वीकार करके बस रहे हैं और वहाँ के निवासियों के साथ अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं।

सन् 1320 में तिब्बत के एक भूटिया सरदार रिनचेन ने कश्मीर पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। वह कश्मीरी मूल की कोटारानी से विवाह करके वहीं बस गया। स्वाभाविक रूप से उसकी सेना के विभिन्न सेनानायक और सैनिक भी कश्मीर में बसे और उन्होंने अपने वंश को आगे बढ़ाया जिसके लिये उन्होंने स्थानीय स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये।

जब सुल्तान सिकन्दर सन् 1389 में कश्मीर का शासक बना तो उसने बहुत बड़े पैमाने पर तलवार की नोक पर धर्म परिवर्तन का कार्य प्रारम्भ किया। प्रायः यह कहा जाता है कि उसके शासन काल में केवल 11 कश्मीरी पंडितों के परिवार बचे थे। जिन्होंने किसी प्रकार घनें जंगलों तथा गहरी कन्दराओं में छुपकर अपने धर्म की रक्षा की थी। यह भी कहा जाता है कि इन कश्मीरी पंडितों ने अपनी जनसंख्या को बढ़ाने तथा अपने वंश को आगे चलाने के उद्देश्य से विवश होकर महाराष्ट्र की ब्राह्मण कन्याओं से विवाह किया और इसी काल खण्ड में महाराष्ट्र के अनेक ब्राह्मण परिवार कश्मीर में आकर बसे। उनमें से जो मुम्बादेवी के उपासक थे उनके वंशज अपना कुलनाम मुबई लिखने लगे जो जोशी थे उनके वंशज पहले अपना कुलनाम ज्योतिषी तथा कालान्तर में जुत्शी लिखने लगे। पर इस कथन की पुष्टि करने के लिये इस समय कोई प्रामाणिक दस्तावेज या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि कश्मीरी पंडितों के कुलनामों पर मौहम्मद फ़ौक ने कुछ शोध कार्य अवश्य किया है।

आज से लगभग 50–60 वर्ष पूर्व जब कभी भी किसी कश्मीरी पंडित परिवार में कोई विवाह का रिश्ता आता था तो प्रायः उस घर की बूढ़ी औरतें पूँछती थीं कि उसकी ज़ात क्या है जिससे उनका अभिप्रायः सतही तौर पर कुलनाम से होता था और जो उस समय सुनने में कुछ अटपटा सा लगता था। पर यदि कश्मीरी पंडितों के कुलनामों पर वृहद शोध कार्य किया जाये तो वह बहुत कुछ इंगित करते हैं और एक प्रकार से उनकी ज़ात का सूचक है जो इस बात का संकेत देते हैं कि उनके पूर्वज वास्तव में कौन लोग थे और कहाँ से आकर कश्मीर घाटी में बसे। उदाहरण के लिये लंकर चक मूल रूप से दारदिस्तान का रहने वाला था जो वहाँ से आकर कश्मीर घाटी में बसा और उसके वंशज कालान्तर में अपना कुलनाम चक लिखने लगे। पंडित पृथ्वी नाथ चक कानपुर के एक नामी–गिरामी वकील थे जिनके कुशल मार्गदर्शन में पंडित मोती लाल नेहरू ने अपनी वकालत आरम्भ की थी। तब अक्सर बूढ़ी औरतें यह

भी पूछती थीं कि अमुक ख़ानदान की सुच्ची हड्डी है कि नहीं जिसका अभिप्राय यह होता था कि उस ख़ानदान में कोई दूसरी क़ौम की औरत ब्याह करके तो नहीं आयी है।

अब यदि हम कश्मीरी पंडितों की शारीरिक संरचना का व्यापक अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि उनमें कुछ लम्बे तो कुछ नाटे हैं, कुछ का वर्ण गोरा तो कुछ का काला है, कुछ के नाक नक्श खड़े तो कुछ के चपटे हैं। कुछ की आँखों का रंग कंजा तो कुछ का भूरा है यह सब लक्षण यह स्पष्ट संकेत देते हैं कि कश्मीरी पंडितों के पूर्वज किसी एक विशेष नस्ल के न होकर विभिन्न नस्लों तथा जातियों के थे जो विभिन्न काल खण्डों में कश्मीर घाटी में पृथ्वी के विभिन्न भू–भागों से आकर बसे और वहाँ की सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों, मान्यताओं तथा परम्पराओं को आत्मसात करने के पश्चात वह कश्मीरी पंडित कहलाने लगे। वहीं कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि मुग़ल सम्राट मोहम्मद शाह रंगीले (1719–1747) के एक शाही फ़रमान के द्वारा इनको कश्मीरी पंडित के सम्बोधन से पुकारा जाने लगा। यह वास्तव में शोध के लिये एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। जिस पर मानव विज्ञान शास्त्रियों को पूरी गम्भीरता के साथ विचार करना चाहिये। कश्मीरी भाषा में कश्मीर की सीमाओं से लगे हुए क्षेत्रों की बोलियों के शब्दों का समावेश भी कुछ इसी बात की पुष्टि करता है कि विभिन्न दिशाओं से कारवां आते गये और कश्मीर बसता गया।

विगत माह दक्षिण कश्मीर में श्रीनगर से लगभग 125 कि.मी. दूर कुतबल नामक पठारी क्षेत्र में खुदाई के दौरान पुरातत्वविदों को भूतल के भीतर छिपी

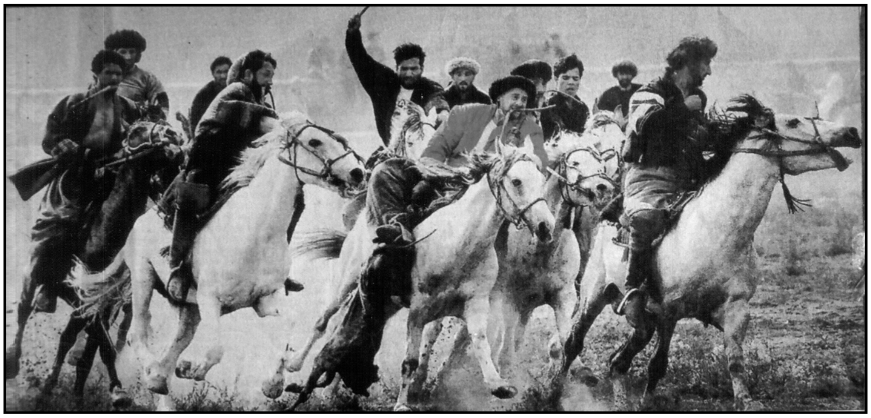

कश्मीर पर आक्रमण का एक दृश्य

हुई लगभग 5000 वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। कश्मीर के पुरातत्व विभाग के उपनिदेशक मोहम्मद शफ़ी ज़ाहिद के अनुसार यह इस बात की पुष्टि करता है कि कश्मीर घाटी पहले सतीसर नाम की झील थी जहाँ लगभग 5000 वर्ष पूर्व पर्वतों की चोटियों पर आबादी थी और झील का पानी निकल जाने के पश्चात लोगों ने पहाड़ों की चोटियों से नीचे उतरकर बसना प्रारम्भ किया। जो अवशेष खुदाई में प्राप्त हुए हैं उनके अध्ययन से यह आभास होता है कि यह सभ्यता काफ़ी प्रगति कर चुकी थी और उसको विज्ञान तथा वास्तु शास्त्र का समुचित ज्ञान था। अब अति आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कर इस सभ्यता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है जिससे कश्मीरी पंडितों के पूर्वजों के बारे में बहुत सी धारणायें विज्ञान की कसौटी पर कसी जा सकती है। आशा है पुरातत्वविद् इस पहेली को विज्ञान द्वारा सुलझाने में अवश्य सफ़ल होंगे क्योंकि इस वैज्ञानिक युग में हमारे वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष के अनेक रहस्यों का पता लगाने में अभूतपूर्व सफ़लता प्राप्त की है और उनके लिये यह कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। पर अब बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि क्या यह सब वास्तव में सम्भव हो पायेगा।

श्रीनगर से 125 कि.मी. दूर कुटवल में 5000 वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेस

यहाँ पर सुधी पाठकों की सूचना के लिये यह बताना अनुपयुक्त न होगा कि वैज्ञानिकों की अभी तक यह धारणा थी कि इस पृथ्वी पर पहले मानव के पद चिन्ह अफ़्रीका में पड़े परन्तु पेइचिंग के पास एक गुफ़ा से मिले आधुनिक मानव के कंकाल से इस धारणा पर पुनः एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लग गया है।

सभ्यता की राह पर आदमी के मिटते बनते पद चिन्हों को तलाशने टटोलने और इधर–उधर बिखरे पृष्ठों को जोड़कर सभ्यता के विकास का अध्याय तैयार करने में जुटे चीनी और अमरीकी अनुसन्धानकर्ताओं और वैज्ञानिकों ने शुरूआती आधुनिक मानव के करीब 40 हज़ार साल पुराने कंकाल पर केन्द्रित

किया है। उनका कहना है कि पेइचिंग के फतेऊकोयदिमान उपनगर स्थित तियानपुआन गुफ़ा से सन् 2003 में मिले कंकाल यह संकेत दे रहे है कि सभ्यता के डगर पर मानव के सफ़र की यह दास्तान समझनी उतनी सरल नहीं है जितनी आपेक्षित थी। सी.ए.एस. के इंस्टीट्यूट आफ़ वर्टिब्रेट पेलेटोलोजी एण्ड पेलिओंटोलोजी से जुड़े होंग शोंग के नेतृत्व में चीनी और अमरीकी वैज्ञानिकों के एक दल ने यह अध्ययन किया है। यह दुर्गम क्षेत्र कभी प्राचीन मंगोलिया का अंग रहा है।

इस खोज से इस धारणा को काफ़ी बल मिलता है कि जब कश्मीर घाटी सतीसर नाम की झील थी तो उसके चारों ओर पहाड़ों की चोटियों पर यह आदिम जातियाँ उस क्षेत्र से आकर बसीं जो सतीसर का पानी निकल जाने के पश्चात् चोटियों से नीचे उतरकर समतल भूमि पर आकर निवास करने लगीं। इस कथन में कितना दम है इसकी पुष्टि केवल वैज्ञानिक आधार पर कश्मीर की प्राचीनतम जातियों के बारे में शोध करने पर ही की जा सकती है।

हमको मालूम है जन्नत (कश्मीर) की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़्याल अच्छा है।।

कश्मीरी पंडित और डॉ. सर इक़्बाल

विगत वर्ष कश्मीर के कुछ प्रमुख समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में अल्लामा इक्बाल के पूर्वजों को लेकर काफी गर्मा–गर्म बहस छिड़ी जिसमें अनेक तथाकथित धर्मनिरपेक्ष विद्वानों तथा बुद्धिजीवियों ने अपने कुतर्कों द्वारा यह सिद्ध करने की भरपूर चेष्टा की कि अल्लामा इक्बाल के पूर्वज मूल रूप से इस्लाम धर्म के अनुयायी थे और उनका वास्तव में कभी भी हिन्दू धर्म से कोई नाता नहीं रहा। वैसे भी आजकल विदेशों में मुख्य रूप से पाश्चात्य देशों में फिरकापरस्त संगठन एक अन्तर्राष्ट्रीय षड़यंत्र और सोची–समझी रणनीति के अन्तर्गत विभिन्न संचार माध्यमों को उपयोग करते हुए यह भ्रामक दुष्प्रचार करने में जुट गए हैं कि कश्मीर आदिकाल से एक मुस्लिम बहुल देश रहा है और वहाँ की सभ्यता और संस्कृति से कभी भी हिन्दुओं का कुछ लेना–देना नहीं रहा। कश्मीर घाटी के इतिहास का इस्लामीकरण करने के उद्‌देश्य से यह लिखा जा रहा है कि उसे कश्यप मुनि ने नहीं अपितु नोहा ने बसाया था और उसको आदिकाल से बाग–ए–सुलेमान के नाम से जाना जाता है।

आज देश में तीव्र गति के साथ बदल रहे सामाजिक समीकरणों और देश के राजनेताओं द्वारा अपने–अपने वोट बैंक को साधे रखने की होड़ में वह अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए न केवल देश के इतिहास के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं अपितु उसको तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत करने से भी नहीं हिचकिचा रहे हैं जो न केवल वास्तविकता से परे है बल्कि काल्पनिक मनगढ़ंत घटनाओं पर आधरित हैं जिसका तथ्यों से कोई लेना–देना नहीं है। यह इतिहास लेखन के क्षेत्र में अनेक विसंगतियों को जन्म दे रहा है जिसके कारण कभी–कभी बड़ी ही विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि सुधी तथा विद्वान् पाठकों को इस सम्बन्ध में उपलब्ध तथ्यों से परिचित कराया जाए ताकि वह दुष्प्रचार के कुप्रभाव से अपने को मुक्त रख सकें और कहीं यह न समझ बैठें कि हर चमकने वाली सुनहरी वस्तु सोना है।

कश्मीर घाटी में पठानों के शासन काल (1753–1819) में जब सन् 1813 में आजम खाँ वहाँ का सूबेदार बना तो उसने कुछ कश्मीरी पंडितों को जैसे मिर्ज़ा पंडित, सहज राम सप्रू, बीरबल दर तथा सुख राम सफाया इत्यादि को

सरकारी राजस्व वसूलने के लिए कारदार नियुक्त किया पर कालान्तर में किन्हीं कारणों से राजस्व वसूली में गड़बड़ी को लेकर इन पंडित कारदारों और आजम खाँ के बीच गहरे मतभेद उत्पन्न हो गए। आज़म खाँ ने इन पंडितों पर सरकारी अभिलेखों के साथ छेड़छाड़ करके राजस्व वसूली में हेराफेरी करके गबन करने का आरोप जड़ दिया जिसके कारण इन पंडितों में भय और आतंक व्याप्त हो गया। इस सम्बन्ध में डॉ. पारिमू को सन् 1939–40 में कुछ फारसी लिपि में लिखे गए दस्तावेज़ हाथ लगे जिनके अनुसार पंडित सहज राम सप्रू ने सरकारी राजस्व का कुछ अंश राजकीय कोषागार में जमा करने के स्थान पर अपने परिवार के कुछ सदस्यों के विवाह के अवसर पर व्यय कर दिया था। जब आज़म खाँ के कुछ गुमाश्तों ने यह सूचना उसको दी तो उसने वास्तविकता को जानने के लिए पंडित सहज राम सप्रू को अपने दरबार में तलब किया जिन्होंने बहुत सी सहज भाव से अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। आज़म खाँ ने पंडित सहज राम सप्रू के सम्मुख दो शर्तें रखीं या तो वह इस्लाम धर्म को कबूल कर लें या फिर अपनी गर्दन कटवायें। डॉ. पारिमू के अनुसार पंडित सहज राम सप्रू ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और वह कश्मीर घाटी छोड़कर पंजाब चले गए और वहाँ सियालकोट नगर में बस गए।

यहाँ आश्चर्य की बात यह है कि इस सम्बन्ध में कश्मीर के इतिहासकार मौलवी हसन का मत एकदम भिन्न हैं। वह डॉ. पारिमू के निष्कर्ष को एक सिरे से खारिज करते हुए लिखते हैं कि वास्तव में पंडित सहज राम सप्रू को सन् 1796 में सूबेदार अब्दुल्ला खाँ अलकॉज़ी ने कारदार नियुक्त किया था और उनके बाद सूबेदार अता मोहम्मद खाँ बरकाज़ी ने सन् 1806 में अपना दीवान बना दिया। जब आज़म खाँ सन् 1813 में कश्मीर का सूबेदार बना तो उसने भी पंडित सहजराम सप्रू को अपना दीवान बना दिया। पंडित सहज राम सप्रू कालान्तर में आज़म खाँ के विश्वासपात्र बन गए पर जब सन् 1819 में महाराजा रणजीत सिंह की सिख सेना ने कश्मीर घाटी पर विजय प्राप्त की और आज़म खाँ पराजय के डर से काबुल भाग गया तो पंडित सहज राम सप्रू अपने परिवार सहित सियालकोट में जाकर रहने लगे कि कहीं उनकी आज़म खाँ से निकटता के कारण उनके परिजनों को कोई हानि न उठानी पड़े। पंडित सहज राम सप्रू ने कभी भी इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया जैसा डॉ. पारिमू ने वर्णन किया है जो वास्तविकता से एकदम परे है और इस सम्बन्ध में उपलब्ध तथ्यों पर आधारित नहीं है।

इस सप्रू परिवार से प्राप्त वंशावली के अनुसार पंडित सहज राम सप्रू के दो पुत्र बीरबल सप्रू तथा देवी सहाय सप्रू थे। पंडित बीरबल सप्रू को विरासत में सियालकोट में काफी ज़मीन और जायदाद गुजरात, शोभा सिंह का किला और कूजा इत्यादि स्थानों में मिली थी। वह मुख्य रूप से एक ज़मींदार रहे और उन्होंने कोई नौकरी नहीं की। पंडित बीरबल सप्रू के पाँच पुत्र क्रमशः गंगा बिशन, ठाकुर दास, कन्हैया लाल, मुकुन्द लाल और राधा कृष्ण तथा एक पुत्री गंगा थी।

पंडित बीरबल सप्रू के दोनों बड़े पुत्र गंगा बिशन और ठाकुर दास सियालकोट में ही रहकर अपनी ज़मीन और जायदाद देखते रहे यद्यपि इन दोनों का विवाह हुआ था पर इनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी और इनका वैवाहिक जीवन भी बहुत अधिक सुखमय नहीं व्यतीत हुआ क्योंकि इन्हें कई दैवी आपदाओं को झेलना पड़ा।

पंडित सहज राम सप्रू के तीसरे पुत्र पंडित कन्हैया लाल सप्रू थे जिनका विवाह कश्मीर की इन्द्राणी के साथ सम्पन्न हुआ था। पंडित कन्हैया लाल सप्रू के तीन पुत्र क्रमशः रतन लाल, बिहारी लाल और नन्द लाल तथा पाँच पुत्रियाँ थीं जिनमें उनकी चार पुत्रियों की अल्प आयु में ही मृत्यु हो गई थी। उनकी केवल एक पुत्री प्राणाशुरी ही जीवित रही जिनका विवाह अमृतसर के निवासी पंडित राम प्रसाद सोपोरी के साथ सम्पन्न हुआ था जिनके वंशज पंडित कुंवर कृष्ण सोपोरी (अभिनेता राजकुमार के भाई) आजकल लखनऊ के इन्दिरा नगर में बी–22 सरकारी फ्लैट्स में भूतनाथ मार्केट के निकट रहते हैं।

पंडित कन्हैया लाल सप्रू के सबसे बड़े पुत्र पंडित रतन लाल सियालकोट में निवास करने के कारण वहाँ पनप रही गंगा जमुनी तहज़ीब की लपेट में आ गये और अपनी युवावस्था के आवेग में पड़ोस में रह रही एक हसीन पंजाबी मुस्लिम लड़की नूरबानो को अपना दिल दे बैठे और उसके प्रेम के मायाजाल में फँसकर अपने परिजनों की भावनाओं के विरूद्ध उससे निकाह कर बैठे। उस काल खण्ड में लखनऊ के कश्मीरी मुहल्ले में सन् 1884 में एक इसी प्रकार की घटना घट चुकी थी जिसने पूरे देश में कश्मीरी पंडित बिरादरी को झकझोर कर रख दिया था। लखनऊ निवासी युवा पंडित बिशन नरायण दर ने बिरादरी की भावनाओं के विरूद्ध इंग्लैण्ड की समुद्री यात्रा की थी जिसके कारण उनको बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया था और जिसको लेकर बिरादरी का

विभाजन धर्म सभा और बिशन सभा में हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप एक ओर परम्परावादी तथा दूसरी ओर प्रगतिशील विचारधारा वाले पंडित थे जो परिवर्तन में विश्वास रखते थे। स्वाभाविक रूप से इस संवेदनशील वातावरण में पंडित रतन लाल सप्रू द्वारा एक मुस्लिम लड़की के साथ विवाह को उनके लाख प्रयत्नों के बाद भी बिरादरी की स्वीकृति नहीं मिल पाई और उनको इस कार्य के लिए बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया। उनको फिर विवश होकर कलमा पढ़कर इस्लाम धर्म का अनुयायी बनना पड़ा और उन्होंने अपना नाम बदल कर नूर मोहम्मद रख लिया।

डॉ. सर अल्लामा इक्बाल इन्हीं नूर मोहम्मद के पुत्र थे जिनका जन्म 9 नवम्बर सन् 1877 को सियालकोट में हुआ था। वह सियालकोट से एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् लाहौर चले गए थे। सर इक्बाल ने फिर लाहौर के राजकीय कालेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप 1905 में इंग्लैण्ड चले गए जहाँ कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से दर्शन शास्त्र में आपने परास्नातक की उपाधि ग्रहण की। आप फिर वहाँ से जर्मनी चले गए जहाँ के म्यूनिख विश्वविद्यालय से आपने ईरान के फलसफे पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपने फिर लन्दन जाकर बैरिस्ट्री का इम्तिहान पास किया और सन् 1908 में पुनः भारत वापस आकर लाहौर के राजकीय महाविद्यालय में कुछ वर्ष अध्यापन का कार्य किया। फिर वहाँ से त्यागपत्र देकर वकालत करने लगे। आपका लगभग 65 वर्ष की आयु में 21 अप्रैल 1938 को लाहौर में स्वर्गवास हो गया।

डॉ. सर अललामा इक़्बाल

इक्बाल को अधिकतर लोग राष्ट्रीय गीत "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा....." के रचियता के रूप में जानते हैं पर उन्होंने कश्मीरी पंडितों का वंशज होने के नाते गायत्री मंत्र का उर्दू भाषा में बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया है जो कुछ इस प्रकार है–

"है महफ़िले वजूद का सामान तरज़ तू
याज़दान–ए–सकीनन–ए–नशेब फरज़ तू
हर चीज की हयात का परवरदिगार तू
ज़एदगा ये नूर का है ताजदार तू
ऐ अफ़ताब हमको ज़िया–ए–शुरूर दे
चश्मे खिदरत को अपनी अंजली से नूर दे"

पंडित बीरबल सप्रू के पाँचवें और सबसे छोटे पुत्र पंडित राधा कृष्ण सप्रू थे जिनका जन्म सन् 1828 में हुआ था। उनका लालन–पालन उनके चाचा पंडित देवी सहाय सप्रू की देखरेख में हुआ। जिन्होंने उनको एक प्रकार से अपना दत्तक पुत्र बना लिया था। पंडित राधा कृष्ण सप्रू अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् देहली कालेज के अध्यापक हो गए थे और वहाँ मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के शासन काल (1837–1858) में बाजार सीताराम मुहल्ले में निवास करते थे।

सन् 1857 के गदर के पश्चात् अंग्रेजों ने पंडित राधा कृष्ण सप्रू को बिजनौर जिले का डिप्टी कलक्टर बना दिया था। आपका विवाह सियालकोट के दामोदर पंडित की सुपुत्री शारिकाशुरी के साथ सम्पन्न हुआ था। आपके केवल एक पुत्र पंडित अम्बिका सहाय सप्रू तथा पाँच पुत्रियाँ थीं जिनमें जैना का विवाह करौली निवासी पंडित नन्द लाल वातल के साथ, लक्ष्मी का विवाह मेरठ निवासी पंडित लाडली नाथ गुर्टू के साथ, सुक्खी का विवाह जयपुर निवासी पंडित उत्तम नाथ कौल के साथ, रम्मो का विवाह लखनऊ निवासी पंडित इकबाल नरायण बहादुर के साथ तथा बिन्दो का विवाह इलाहाबाद निवासी पंडित द्वारिका नाथ कुंजरु के साथ सम्पन्न हुआ था।

पंडित राधा कृष्ण सप्रू की 1906 में मृत्यु हो गई। उनके एकमात्र पुत्र पंडित अम्बिका सहाय सप्रू का विवाह लखनऊ के कश्मीरी मुहल्ले के निवासी पंडित बैजनाथ हरकौली की सुपुत्री गौरा के साथ सम्पन्न हुआ था।

डॉ. सर तेज बहादुर सप्रू इन्हीं पंडित अम्बिका सहाय सप्रू के पुत्र थे जिनका जन्म 8 दिसम्बर सन् 1875 को अलीगढ़ में हुआ था जहाँ उस समय उनके पितामह पंडित राधे कृष्ण सप्रू डिप्टी कलैक्टर थे। इस सप्रू परिवार की

वंशावली के अनुसार डॉ. सर तेज बहादुर सप्रू और डॉ. मोहम्मद इकबाल न केवल समकालीन व्यक्ति थे पर आपस में चचेरे भाई थे। यह दोनों ही महानुभाव उर्दू तथा फारसी भाषा के विद्वान और कानूनविद् थे।

पंडित त्रिलोकी नाथ कौल ने अपने संस्मरण में स्पष्ट लिखा है कि डॉ. सर तेज बहादुर सप्रू और डॉ. सर मोहम्मद इक़बाल सन् 1915 तक नियमित रूप से लखनऊ के कश्मीरी मोहल्ले में पंडित बृजनारायण चकबस्त द्वारा आयोजित मुशायरों में भाग लेने के लिए आते रहे जो उस काल खण्ड में उर्दू अदब का एक प्रमुख केन्द्र था और जहाँ उस समय देश के प्रख्यात उर्दू शायरों की महफिलें जमा करती थीं। पर देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् सामाजिक समीकरणों में एक तीव्र गति के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन आया जिसके कारण समाज का स्वरूप बदला। लोग बाद में इस तरह की महफिलें सजाने को अपना बेशकीमती समय बर्बाद करना समझने लगे। दोस्त–दोस्त न रहा प्यार–प्यार न रहा। एक ही झटके में सारा वातावरण बदल गया। किसी दूरदर्शी ने ठीक ही लिखा है कि जब हर शाख पर उल्लू बैठे हों तो अंजाम गुलिस्तां क्या होगा।

प्रो. चमनलाल सप्रू के अनुसार स्यालकोट निवासी पंडित अमरनाथ सप्रू डॉ. इक़बाल के चचेरे भाइयों में थे। पंडित अमरनाथ सप्रू सेवानिवृत्ति के बाद गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में रहते थे। उन्होंने अपनी लागत से वहाँ एक छोटा मकान बनाया और वसीयत में देहांत के बाद उसे गुरुकुल की सम्पत्ति घोषित किया था। उनकी पुत्री राजकुमारी जम्मू निवासी जीवन लाल रावल की पत्नी थी। जीवन लाल रावल शास्त्रीय संगीत में रूचि रखते थे। राजकिशोरी जी जम्मू कश्मीर के शिक्षा विभाग में संस्कृत अध्यापिका थीं। उनका बेटा (भारतीय वायुसेना में सेवारत) प्रियव्रत रावल स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों में श्रीनगर के डी.ए.वी. हाईस्कूल में इनका सहपाठी था। अपने पिताजी के कहने पर छात्रावस्था में 1955 ई. में आगरा से वे पंडित अमरनाथ सप्रू के दर्शन के लिए गुरुकुल कांगड़ी गए। वह उस समय लल्लेश्वरी (लल्लद्यद) के काव्य पर शोध कर रहे थे। उन्होंने डॉ. इक़बाल से सम्बन्धित अनेक संस्मरण सुनाए। प्रेम विवाह के कारण इक़बाल के पूर्वज की धर्मांतरण की बात भी उन्होंने कही थी। पंडित अमरनाथ सप्रू का बाद में स्वास्थ्य बिगड़ता रहा और उन्होंने अपना शोध साहित्य गुरुकुल से पार्सल बनाकर प्रो. सप्रू के पास श्रीनगर भेज दिया और स्वयं अपनी पुत्री राजकुमारी के पास जम्मू आ गए थे। उनकी उर्दू में दो चर्चित पुस्तकें (कश्मीर से सम्बन्धित) **पोश पूज़ा** और **नॉर्य वन** प्रकाशित थीं।

प्रो. सप्रू को आतंकवाद के कारण हड़बड़ी में जनवरी 1990 में रात के अंधेरे में अपना भरा पूरा घर और बहुमूल्य ग्रन्थों और पांडुलिपियों का भण्डार छोड़कर इधर आना पड़ा और पंडित अमरनाथ सप्रू द्वारा भेंट किया गया अमूल्य साहित्य भी अपने असंख्य दुर्लभ ग्रन्थों के साथ इस्लामी आतंकवाद में स्वाहा हो गया।

किश्तियां सबकी किनारे लगती जाती हैं,
न ख़ुदा जिनका नहीं उनका ख़ुदा होता है।

कश्मीरी पंडित और अपसंस्कृति

भूमंडलीकरण के इस आधुनिक युग में पश्चिमी अपसंस्कृति के हमारे राष्ट्रीय जीवन पर पड़ रहे दूषित प्रभाव के परिणामों पर हर समझदार व्यक्ति के लिए चिन्ता करना स्वाभाविक है। पर अभी किन्हीं कारणों से समाज में तीव्रगति के साथ फैल रहे इस अपसंस्कृति के प्रदूषण के विरुद्ध किसी भी स्तर से कोई शक्तिशाली स्वर प्रस्फुटित नहीं हो पा रहा है। अब उपयुक्त समय आ गया है जब हम अपनी जीवन शैली में आ रहे इस अनजाने परिवर्तनों की व्यापक समीक्षा करें कि क्या जीवन पद्धति के नये मूल्य और आदर्श जिनको हम अब निःसंकोच आत्मसात कर रहे हैं वास्तव में हमको एक सही दिशा की ओर ले जा रहे हैं या फिर हमारी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति को समूल नष्ट कर हमें एक ऐसे स्थान पर ला कर पटकेंगे जहां से फिर उबर पाना प्रायः हमारे लिये असम्भव हो जायेगा।

यहां पर यह कहना कदाचित बिलकुल तर्कसंगत होगा कि महाशक्तियों द्वारा रचाये गये इस भूमंडलीकरण के चक्रव्यूह में बहुत ही सुनियोजित तरीके से हमारे समाज के नवयुवकों और नवयुवतियों को निर्द्वन्द व्यक्तिवादी –भोगवादी तथा कानफोड़ शोरवादी संस्कृति परोसी जा रही है जो टिकाऊ बिलकुल नहीं है। वह कुछ क्षण के लिये देखने तथा सुनने में आकर्षक अवश्य है पर उसके दूरगामी परिणाम वास्तव में हमारे छोटे से समाज की ऐसी तैसी करके उसको मटियामेट करने के लिए काफी है। इस प्रदूषण से मुक्ति के लिये अब हमें एक नये जीवन संगीत की तान छेड़नी होगी जो सामूहिक तथा पारस्परिकता पर आधारित हो और जिसमें युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करने की अपार शक्ति हो ताकि हम केवल पाश्चात्य उपभोक्तावादी संस्कृति का कचरा मैदान न बनकर रह जाये। हमारे अपने स्वयं के कुछ मूल्य और आदर्श विकसित होने चाहिये जिन पर हम गर्व कर सकें और जो हमारे विकास का सही मायने में प्रतीक बन सकें। यदि हम वास्तव में अपनी संस्कृति, अपनी परम्पराओं और मान्यताओं को संरक्षित रखने के पक्षधर हैं तो हमें गम्भीर होकर हर स्तर पर सक्रिय रूप से रचनात्मक कार्य करना होगा अन्यथा हमारी चिन्ता केवल एक बौद्धिक अय्याशी बनकर रह जायेगी और कुछ नहीं। वह केवल

ख्यालों में पुलाव पकाने के समान होगा जिसमें व्यक्ति सोचता तो बहुत है पर उसके हाथ लगता कुछ नहीं है। यह केवल एक छलावा है और कुछ नहीं।

आज के समाज का नवधनाढ्य वर्ग जिसके पास अकूत धन है एक बिलकुल नयी पांच सितारा संस्कृति को अपने जीवन का मूल मंत्र मान रहा है और उसको प्राप्त करने के लिए वह सब कुछ करने को सदैव तैयार रहता है। इस नयी विकसित हो रही संस्कृति को दिन की रोशनी से ख़ौफ़ है और रात के अंधेरे से बेइन्तिहा प्यार जहां उसको अपने शबाब पर आने का पूरा अवसर मिलता है। इस संस्कृति के प्रेमियों का आदर्श अमेरिका है। उनका कहना है कि जमकर कमाओ और ऐश करो मारो या फिर मर जाओ। उनके यह खोखले आदर्श व्यापक समाज में अनेक विसंगतियों को जन्म दे रहे हैं और विवेकहीन युवा वर्ग को अनेक प्रकार के कुकर्मों तथा अपराधों को करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। जिसका बहुत बुरा प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। यह सब जानते हुए भी हमारी युवा पीढ़ी इस कामुक संस्कृति का भरपूर आनन्द लेने के लिये बेचैन और बेताब है। इसके दुःखद परिणाम हमको समाचार पत्रों में पढ़ने को अकसर मिलते हैं। मानसिक तनाव से ग्रस्त होकर या तो कोई आत्म हत्या कर लेता है या फिर वह अपना मानसिक सन्तुलन खोकर अपना जीवन निरर्थक बना देता है। अनेक कुंवारी कन्याएँ अपना या तो कौमार्य खो बैठती हैं या फिर गर्भधारण कर बैठने पर आत्म ग्लानी के कारण सामाजिक बहिष्कार के भय से अपनी लीला समाप्त कर लेती हैं इस प्रकार बहुत सी कलियां विकसित होकर फूल बनने से पहले मसल दी जाती हैं। स्वाभाविक रूप से युवा पीढ़ी भी हमारे समाज का अभिन्न अंग है और देश की भावी कर्णधार है। यदि वह ही लपेटे में आ गयी और अनजाने में ही एड्स का शिकार हो गयी तो फिर देश का क्या होगा। उसका कल्याण फिर कौन करेगा।

हमारे देश में उदारीकरण और स्त्रियों के सशक्तीकरण के दौर में जहां एक ओर महिलाओं के लिये कई दरवाजे खुल गये हैं और उनको लगभग हर क्षेत्र में पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने का अवसर प्राप्त हो गया है वहीं दूसरी ओर उन्हें एक उपयोग करने वाली वस्तु भी बना दिया गया है। जिसके कारण उनके मन में अनायास ही इस धारणा ने भी जन्म ले लिया है कि उन्हें धन के साथ साथ अपनी देह को भी सुडौल, सुन्दर तथा आकर्षक बनाये रखना है ताकि वह अपने काम करने के स्थान पर सदा कामुक, आमंत्रक लगती रहे और

पुरुष वर्ग पर अपने इन्हीं गुणों के कारण वर्चस्व बनाये रहें और अपना उल्लू सीधा करती रहें। इस अन्धी चूहा दौड़ में हमारे देश में न जाने कितनी अबोध अबलायें प्रतिदिन यौन शोषण और बलात्कार का शिकार हो रही हैं और विवाहेत्तर सम्बन्धों के कारण न जाने कितने घर बर्बाद हो रहे हैं। दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों पर प्रसारित धारावाहिक भी इसमें अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं जिनको देखकर कुछ विवेकहीन स्त्री तथा पुरुष प्रयोग के तौर पर उनमें बताये हुऐ नुस्खों को अपने जीवन में अपनाते हैं तथा फिर बाद में पश्चाताप करते हैं जब उनकी समझ में आता है कि वह एक ऐसी अन्धी गली में घुस चुके हैं जिसका कोई अन्त नहीं है और जहां से बचकर निकल पाना अब असम्भव बन चुका है।

यह भी एक अजीब विडम्बना है कि यद्यपि उच्च वर्ग की महिलाओं के शिक्षा के स्तर में पिछले कुछ वर्षों में काफी सुधार हुआ है। पर उनकी यह उच्च शिक्षा उनका बौद्धिक विकास कर उनको कलात्मक या सृजनात्मक दिशा में प्रोत्साहित करने के स्थान पर उनको खुलेपन और उच्छृंखलता की ओर अधिक प्रेरित कर रही है जहां अपने शरीर के संवेदनशील अंगों का बेहिचक प्रदर्शन, मदिरापान, कांकटेल पार्टियां पब संस्कृति को ही नारी के संबलीकरण का मापदण्ड माना जा रहा है। अब जो भी स्त्री जरा सा अवसर पाकर अपना सब कुछ दिखाने को तत्पर रहती है उसको प्रगति का सूचक माना जाता है। यही एक मुख्य कारण है कि अब हिन्दी फिल्मों में नायिका वह सब करने को तैयार रहती है जो कभी कैबरे डान्सर किया करती थी क्योंकि उसको सदा यह भय बना रहता है कि कहीं आईटम गर्ल से वह देह प्रदर्शन में मात न खा जाये। कई सिने तारिकाएं अपनी गोलाईयों को और अधिक उभारने और ध्यानाकर्षित बनाने के लिये अब बिना किसी संकोच के प्रतिष्ठित शैल्य चिकित्सकों का सहारा ले रही हैं जो उनके उरोजों को सुडौल और आकर्षक बनाते हैं जो तारिकाओं की सेक्स अपील को कई गुना बढ़ाकर उनको सेक्स बॉम्ब बना देता है और उनकी शो बिजनेस के ग्लैमर में डिमाण्ड बढ़ जाती है मीडिया और विज्ञापनों में भी महिलाओं को यह सब करने के लिये खूब प्रेरित किया है जिनमें अधिकतर माडलों का कम वस्त्रों तथा अर्द्धनग्न अवस्था में बड़ी कामुकता के साथ अपने शरीर की गोलाईयों को थिरकाते हुए प्रदर्शित किया जाता है क्योंकि इस धन्धे में बहुत कम समय में करोड़ों रुपयों के वारे–न्यारे हो जाते हैं जो अन्य प्रकार के किसी कार्य में कदाचित सम्भव नहीं है।

यहां आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि जब किसी स्त्री के पास ज्ञान की कमी होती है तो वह जीवन के यह सब सुख–सुविधा के साधन जुटाने के लिये अपनी सुडौल आकर्षक देह का उपयोग करने लगती है, जो पुनः समाज में व्यभिचार को जन्म देता है इसका मूल कारण यह तीव्र गति के साथ फैल रही अपसंस्कृति है जो अनेक युवाओं और युवतियों को अपने मोह में फांस कर उनके जीवन को नरक बना रही है। अब समाज में सत्ता, धन और उन्मुक आनन्द का एक विषम त्रिकोण बन गया है जिसका स्त्री एक बिन्दु बन गयी है जिसको अधिकतर लोग केवल मौज मस्ती का साधन मानने लगे है। और वह अब केवल उपयोग की वस्तु बन चुकी है। देश के महानगरों में स्थित कई फार्म हाउस इस नव संस्कृति के पोषक एवं संवाहक बन चुके हैं जहां नित्य पार्टिंया, रेन डान्स, फैशन शो, सुन्दरता के लिये प्रतियोगिताएं जैसे कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिनमें नवयुवक और नवयुवतियां मद–मस्त होकर अपने यौवन की गर्मी का भरपूर आनन्द लेते हैं और अपनी कामाग्नी को शान्त करने के पश्चात भोर होते ही एक चुसे हुए आम की भांति अपने घर की ओर अग्रसर होते हैं।

इस अपसंस्कृति का बहुत बुरा प्रभाव अब युवा वर्ग की सोच पर पड़ रहा है। उनमें से बहुत से अवसाद का शिकार होकर आत्म हत्या कर रहे हैं और इस प्रकार की घटनाओं में निरन्तर तीव्र गति के साथ बढ़ोत्तरी देखी जा रही है। वहीं अनेक युवाओं में हिंसा और अवज्ञा की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे अब बिना कुछ संघर्ष किये बहुत कम समय में जीवन की हर उपलब्धि को हासिल करना चाहते हैं क्योंकि उनके पास न तो विवेक है और न किसी कार्य को सुचारु रूप से करने की क्षमता। उनमें बहुत बड़ी संख्या में आन गांवका बलैंडा होते हैं पर वे बहुत ऊँची अभिलाषाएं रखते हैं अब कोई भी युवक कठिन परिश्रम करके कुछ काम करने में विश्वास नहीं रखता है यह भी एक बहुत ही खतरनाक मनोदशा है क्योंकि समाज का कोई भी वर्ग इस मानसिकता के साथ उन्नति नहीं कर सकता है और न ही उससे किसी प्रकार की प्रगति की आशा की जा सकती है। इन्हीं कारणों से समाज में एक अंधी होड़ मची हुई है और हर व्यक्ति साम, दाम, दंड और भेद अर्थात किसी भी मूल्य पर बिना कोई परिश्रम किये सारे सुख सुविधा जुटा लेना चाहता है जिसको किसी भी प्रकार से उचित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यही मनोदशा भ्रष्टाचार की जननी है।

यह बड़े दुःख की बात है कि अब सारे एहसास एवं संवेदनायें क्षण भंगुर होती जा रही हैं। हर वस्तु रातों रात बासी हो जाती है। हर प्रकार का सुख दिनों–दिन कम महसूस होता जा रहा है। अतः प्रतिदिन हृदय एक नयी मौज और नयी मस्ती के लिये लालायित रहता है। जिसके कारण हमारे समाज का संतुलन डगमगा रहा है। समाज में अब स्थिरता घट रही है और अस्थिरता बढ़ रही है। ये मनुष्य में तीन घातक प्रवृत्तियों को जन्म दे रही है। प्रथम अपने आत्म विश्वास में कमी, दूसरे अपने प्रति हिंसा की भावना का जागृत होना और तीसरे औरों के प्रति हिंसा करने की उत्सुकता स्पष्ट रूप से यह तीनों स्थितियां एक स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक है। अतः यह आवश्यक है कि अतिवाद के स्थान पर हम मध्यमवर्गीय मार्ग को प्राथमिकता दें जो हमारे युवा वर्ग को उचित दिशा निर्देश देने की क्षमता रखता हो और हमारी सभ्यता तथा संस्कृति के अनुकूल हो जो हमारी सदियों पुरानी परम्पराओं और मान्यताओं का आदर करते हुए हमें उचित रूप से वास्तविक प्रगति की ओर अग्रसर कर सके ताकि हम अपनी विशिष्ट पहचान को संरक्षित रखते हुए समाज के हर क्षेत्र में नये–नये कीर्तिमान स्थापित कर सकें न कि अपनी विशेष पहचान को समूल नष्ट कर के। हिन्दी के कवि निरंकार देव के शब्दों में –

''द्वार की ओट से चितवन को बहुत देखा है,
मैंने रस–रंग परेमन को बहुत देखा है।
तुम दिखाने को मुझे यह क्या छटा लाई हो,
मैंने इस प्यार के दर्पण को बहुत देखा है''।।

आतंकवाद और कश्मीरी औरतें

जब–जब विश्व के किसी भी क्षेत्र में आतंकवाद पनपता है तो मुख्य रूप से वहां की औरतों को उसका शिकार होना पड़ता है। इन निसहाय औरतों को क्या–क्या मानसिक वेदनायें और यातनायें झेलनी पड़ती हैं। उसकी कल्पना कर पाना बहुत ही कठिन कार्य है क्योंकि इस अमानवीय हिंसा के आक्रोश का प्रभाव सबसे अधिक औरतों पर ही पड़ता है जिनको आतंकवादियों के वेहशियाना कुकृत्यों का खमियाजा उठाना पड़ता है।

धरती का स्वर्ग कही जाने वाली कश्मीर घाटी में लगभग गत 17 वर्षों से निरुद्देश्य हिंसा का तांडव नृत्य चल रहा है जिस पर सरकार की लिबलिबी और मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के कारण अभी तक कोई भी प्रभावकारी अंकुश नहीं लगाया जा सका है। सरकार की इस ढुलमुल नीति का पूरा लाभ घाटी में सक्रिय विभिन्न आतंकवादी गुट और संगठन उठा रहे हैं जो धर्म के नाम पर घाटी में भाड़े के विदेशी मुजाहिदों की घुसपैठ करा कर वहां की आम शान्ति प्रिय जनता के लिये चरस बोकर उनको वहां से अपनी सुरक्षा के लिये देश के अन्य अंचलों में पलायन करने को बाध्य कर रहे हैं। जो भी समाज के वर्ग इस विकृत मानसिकता तथा दूषित विचार धारा के पक्षधर नहीं हैं उन निसहाय लोगों को गोली दाग कर टपका दिया जाता है ताकि भय और आतंक का वातावरण बना रहे और विरोध के स्वर अधिक प्रस्फुटित न होने पायें। इन आतंकियों द्वारा ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है कि उसका भरपूर फ़ायदा उठाकर असामाजिक तथा अराजक तत्त्व घाटी में गदर मचाकर अपना पूरा लाभ उठा सकें क्योंकि हर आतंकवादी संगठन का मुख्य उद्देश्य घाटी में अशान्ति बनाये रखना है ताकि उनकी दुकानें बिना किसी रोक–टोक के चलती रहें।

कश्मीर घाटी में विगत 17 वर्षों से चल रही इस आतंकी हिंसा के दौर में कदाचित कोई घर बचा हो जो इसकी लपेट में न आया हो। इस आतंकवाद के रूप में पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध चलाये जा रहे छद्म युद्ध में सबसे अधिक पीड़ा कश्मीरी महिलाओं को झेलनी पड़ रही है। यद्यपि इस हिंसा में

सबसे अधिक पुरुष मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं पर महिलाओं को अपने निकट के सम्बन्धियों को खोने के अलावा लूट–मार तथा सामूहिक बलात्कार के बाद अपना जीवन पुनः नये सिरे से प्रारम्भ करने को विवश होना पड़ता है जो वास्तव में उनके लिये बहुत अधिक पीड़ादायक तथा मानसिक रूप से अपने को समाज में स्थापित कर पाने में किसी यातना से कम नहीं होता क्योंकि आत्मग्लानी जीवन पर्यन्त पीड़ा करती रहती है।

एक सामाजिक संस्था द्वारा लगभग 6 वर्ष पूर्व किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार अब कश्मीर घाटी में अनेक ऐसे परिवार हैं जहां एक भी पुरुष जीवित नहीं बचा है। उसकी रिपोर्ट के अनुसार लगभग 7012 लड़कियां अनाथ हो चुकी हैं। जिनके माता–पिता अब इस संसार में नहीं हैं। बहुत बड़ी संख्या में ऐसी विधवा हुई महिलायें हैं जिनकी आयु अभी भी बहुत कम है और जिन्होंने अपने जीवन के बहुत कम बसन्त देखे हैं। जो अपने अरमानों के स्वप्न अपनी आंखों में संजो कर बैठी हैं। सन् 1989 से प्रारम्भ हुए इस छद्म युद्ध में हजारों की संख्या में पुरुष अब तक लापता हो चुके हैं और यह क्रम निरन्तर जारी है। पिछले एक दशक में हजारों की संख्या में युवतियां आतंकवादियों तथा भाड़े के मुजाहिदों की काम वासना का शिकार हो चुकी हैं। आतंकवादी केवल इस शंका पर कि अमुक घर का व्यक्ति सुरक्षाबलों के लिये मुख़बिरी करता है या उनको आतंकवादियों के ठिकानों की सूचनाएँ उपलब्ध कराता है उसके घर की महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार करते हैं ताकि उसको उसकी हरकतों के लिये सबक सिखाया जा सके और अन्य स्थानीय नागरिक इस प्रकार का कार्य करने का साहस न जुटा सकें। वहीं कभी–कभी आतंकवादी किसी परिवार में भय उत्पन्न करने के लिए भी इस प्रकार का घृणित कार्य करते हैं।

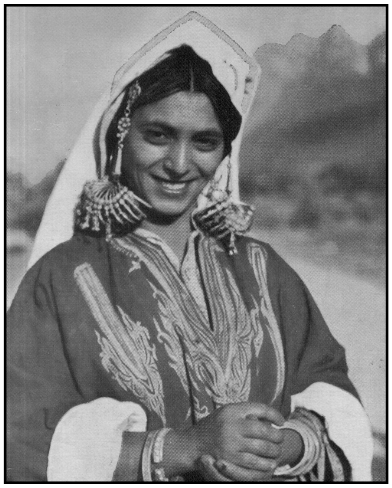

कश्मीरी औरत

आतंकवाद के नाम पर कश्मीरी महिलाओं का बहुत बड़ी संख्या में यौन शोषण स्वयं एक विकराल सामाजिक समस्या बन चुका है कि किस प्रकार

उनका समाज में उचित पुर्नवास किया जाये। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार किसी महिला के साथ बलात्कार करना वास्तव में अपने शत्रु को नीचा दिखाने या फिर उनको शर्मिन्दा करने की एक बहुत प्राचीन मानसिकता है जो आदिकाल से चली आ रही है और जिसका समय समय पर विभिन्न परिस्थितियों में एक शस्त्र के रूप में प्रयोग होता रहा है जिसके द्वारा अपने शत्रु का मनोबल नष्ट कर उस पर सहजता से विजय प्राप्त की जा सके। वैसे भी प्राचीन समय में युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये विषकन्याओं का प्रयोग होता रहा है। राजा इन्द्र ने विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिये मेनका नामी अपसरा का प्रयोग किया था जो बहुत ही सफल रहा था। यद्यपि इस प्रक्रिया में शारीरिक और मानसिक रूप से महिलाओं को ही प्रताड़ित होना पड़ता है पर बृहद रूप से बलात्कार को पूरे समुदाय पर हमला माना जाता है। अतः इसका एक ब्रह्मास्त्र के रूप में यदा–कदा खुल कर प्रयोग किया जाता है।

एक क्रूर प्रताड़ना और मानसिक वेदना के अतिरिक्त अलगाववाद और अशान्ति का प्रभाव सबसे अधिक कश्मीर की महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ा है। घाटी में सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित स्वास्थ्य सेवाओं के धाराशाही होने का प्रभाव भी सबसे अधिक घाटी की ही महिलाओं पर पड़ा है। समय समय पर विभिन्न आतंकवादी गुटों द्वारा जारी धमकियों के कारण घाटी में चल रही परिवार कल्याण तथा परिवार नियोजन से सम्बन्धित अनेक क्रान्तिकारी योजनायें या तो बुरे तरीके से चरमरा गई हैं या फिर पूर्ण रूप से ठप हो गयी हैं। जिसका स्वाभाविक रूप से सीधा प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। वे न चाहते हुए भी अधिक संख्या में बच्चे पैदा करने को मजबूर हैं क्योंकि उनके पास गर्भ निरोधक सामग्री का अभाव है और इस प्रकार के साधनों का प्रयोग करना उनके धर्म में वर्जित है।

बलात्कार का शिकार नवयुवतियां गर्भ धारण करने के पश्चात लाचारी में अपनी तथा अपने परिवार की लाज बचाने के लिये अनपढ़ तथा अप्रशिक्षित दाईयों से चोरी छिपे अवैध रूप से गर्भपात कराती हैं जिसमें उन्हें अपनी जननेन्द्रियों से सम्बन्धित अन्य रोगों का शिकार होना पड़ता है क्योंकि यह अप्रशिक्षित दाइयां कभी कभी गर्भवती महिला के गर्भाशय को भी नुकसान पहुँचा देती हैं जिससे वे भविष्य में गर्भधारण करने की सामर्थ सदा के लिये खो बैठती हैं।

वहीं परिवार नियोजन के उचित संसाधनों के अभाव में बहुत बड़ी संख्या में लड़कियां कम उम्र में भी गर्भ धारण कर रही हैं जो उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है और उनमें से कुछ अवैध गर्भभात करा रही हैं जिसके कारण महिलाओं की कम उम्र में मृत्यु की दर लगातार बढ़ रही है। क्योंकि स्त्रियों के उपचार के उचित साधन उपलब्ध नहीं हैं और न ही समय रहते उनको सही चिकित्सा का परामर्श मिल पाता है।

घाटी के सुदूर गांवों में स्थिति और भी शोचनीय है। वहां उपयुक्त चिकित्सा की सुविधायें प्राय नगण्य हैं। यहां महिलायें अनेक रोगों से ग्रस्त हैं पर उनका उपचार करने वाला वहां कोई कुशल चिकित्सक उपलब्ध नहीं है। वहां से काफी बड़ी संख्या में नर्सों तथा डाक्टरों के घाटी से देश के अन्य अंचलों में पलायन कर जाने के पश्चात इन सेवाओं को उचित प्रकार से चलाना अब प्रायः असम्भव हो गया है जिसके परिणाम स्वरूप वहां की आम जनता में तरह तरह की बीमारियों से ग्रसित हो जाने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ रही है। उचित सुविधायें न मिलने के कारण महिलायें मुख्य रूप से खून की कमी, कैलशियम तथा मानसिक तनाव का शिकार हो रही हैं। प्रशिक्षित डाक्टरों तथा मेडिकल स्टाफ की कमी के कारण घाटी में बहुत से अस्पताल सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पा रहे हैं और वह रोगियों को उचित स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवायें उपलब्ध कराने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। इसका प्रभाव निश्चित रूप से महिलाओं की कार्य क्षमता पर भी पड़ रहा है क्या कभी कोई समाज जिसकी महिलाओं की इस प्रकार की दुर्दशा हो उन्नति कर सकता है। महिलाओं को अपमानित और तिरस्कृत कर कभी किसी समाज का उत्थान नहीं हुआ। जिस समाज में महिलाओं की शक्ति का निरादर किया गया वह समाज इतिहास इस बात का साक्षी है कभी पनप नहीं पाया और अन्तोगत्वा वह रसातल में मिल गया। यह नारी सशक्तीकरण का युग है अतः हमें समाज में महिलाओं को एक प्रतिष्ठित स्थान दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि भारतीय सस्कृति में स्त्री को जननी माना गया है। शशी कला सपना के शब्दों में –

"ज़र्रा–ज़र्रा होकर बंटती रही है ज़िन्दगी मेरी
कभी नहीं संभली बिखरती रही है ज़िन्दगी मेरी
अंधेरी दुनियां को उजाला तो मिलेगा कभी
उजाले की खोज में भटकती रही है ज़िन्दगी मेरी।।

कश्मीरी पंडित और सामाजिक परिवर्तन

भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति सम्पूर्ण विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है जहाँ लगभग 3050 वर्ष ईसा से पूर्व वेदों की रचना की गयी। जिनको समस्त ज्ञान का मूल स्रोत माना जाता है और जिनको मुख्य आधार मानकर अनेक पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने अनवेष्ण कर विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में नये–नये कीर्तिमान स्थापित किये और इस मायावी संसार को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया पर किन्हीं कारणों से हम स्वयं उस ज्ञान के अमूल्य भण्डार का पूर्ण लाभ लेने से वंचित रह गये और अपनी अज्ञानता तथा कायरता के कारण विदेशी कबाईली आक्रान्ताओं के एक लम्बे समय तक शोषण और तिरस्कार का शिकार बने रहे और उनकी गुलामी को झेलते रहे क्योंकि कदाचित हमारी मृत आत्मा न तो कभी इन मानसिक वेदनाओं के प्रति जागृत हुई न ही शारीरिक यातनाओं के विरूद्ध लड़ने की क्षमता की शक्ति का कभी हमारे शरीर में संचार हुआ कि हम एकजुट होकर डटकर उसका वीरता और साहस के साथ सामना करते। हमने सदा अपने लिबलिबे स्वभाव के कारण इस प्रकार की संकट की घड़ी को प्रभु की इच्छा समझा और उसका प्रतिकार करने के स्थान पर इन असुर शक्तियों का सदैव अपना शीश नवाकर स्वागत किया जिसका दुःखद परिणाम आज हमारे सामने है कि हमको हमारी जन्मभूमि से लतिया कर बाहर निकाल दिया गया है और अब हम अपने ही देश में एक शरणार्थी का जीवन व्यतीत करने को अभिशप्त है।

हमारे इतिहास की यह सबसे बड़ी विडम्बना रही जिसके कारण हम वह आज तक न बन सके जो वास्तव में हमारे समाज को हमसे अपेक्षा थी और हमें होना चाहिये था। इस दुःखद उदासीनता के कारण आज हम एक धोबी के कुत्ते के समान न घर के रहे न घाट के और अपने नेतृत्व के डांवाडोल रवैये और दिशा विहीन विचारधारा के कारण इधर–उधर भटकने को लाचार हैं और अपनी इस दुर्दशा से निकलने का मार्ग ढूँढ पाने में अपने को निसहाय और असमर्थ पा रहे हैं।

यों तो प्रायः कहा जाता है कि कश्मीर में इतिहास लेखन की परम्परा बहुत पुरानी है जिसका सूत्रपात कल्हण पंडित ने किया जिन्होंने छठी और सातवीं शताब्दी के मध्य लिखे गये संस्कृत के ग्रन्थ नीलमत पुराण को अपने इतिहास लेखन का मूल आधार बनाया। जिसमें उन्होंने बहुत ही सुन्दर रूप में कश्मीर के इतिहास को संस्कृत के पद्यों में वैदिक काल से 1149 तक संजोया है। उस महान कवि की यह अमर रचना **राज तरंगिणी** कहलाती है जिसे संस्कृत वाङ्मय की मुकुट मणि माना जाता है। इसमें तिथि क्रम से कश्मीर के शासकों का प्रमाणिक इतिहास है। आठ तरंगों में विभक्त यह महान ग्रन्थ 7826 पद्यों में रचा गया है। जिसमें अनेक घटनाओं का एक सशक्त लेखनी द्वारा बहुत ही मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। कल्हण पंडित की सदैव यह अवधारणा रही कि इतिहासकारों को राग–द्वेष से सर्वथा मुक्त रहकर इतिहास की रचना करनी चाहिए जो उनके द्वारा स्वयं लिखित पंक्तियों से परिलक्षित होता है।

कश्मीरी मुहल्ले में कौल शर्गा खानदान की ऐतिहासिक हवेली जिसका निर्माण सन् 1883 में पंडित बैजनाथ शर्गा द्वारा करवाया गया।

श्लाघ्यः स एवं गुणवानराग द्वेष बहिष्कृताः।

भूतार्थ कथने यस्य स्थयेस्येव सरस्वती।।

इतिहास लेखन के इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए जोनराज ने सुल्तान जैनुलआबिदीन (1420–1470) के शासन काल में द्वितीय राजतरंगिणी की रचना की जिसमें 1149 से 1459 ईस्वी तक कश्मीर के कुल 23 शासकों का विस्तार से वर्णन है। इनमें 13 हिन्दू, एक भौट्ट तथा 4 मुस्लिम सुल्तान हैं। इसके पश्चात् श्रीवर ने 1459 से 1486 प्रज्ञा भट ने 1486 से 1513 ई. और शुक ने 1513 से 1586 ई. तक क्रमशः तीसरी, चौथी और पाँचवी राजतरंगिणियों की रचना की पर किन्हीं कारणों से इस परम्परा को बनाये रखना बाद के इतिहासकारों से सम्भव नहीं हो सका।

अब हमें इस बात पर चिन्तन तथा आत्म मंथन करना चाहिये कि जिस

कश्मीर के इतिहास की रचना स्वयं एक कश्मीरी पंडित ने प्रारम्भ की हो उसके संरक्षण के प्रति हम कितने सजग हैं और अपनी इस मूल्यवान धरोहर को सुरक्षित रखने के लिये हम कितने कृत संकल्प हैं। समाज के अन्य वर्ग इतिहास के पृष्ठों में से अपने गुमनाम महापुरुषों को निकाल कर उनको महिमामण्डित करने में संलग्न है और करोड़ों रुपये व्यय करके उनकी पुण्य स्मृति को जीवित रखने के लिये उनके विभिन्न नगरों में भव्य स्मारक निर्माण करा रहे हैं। वहीं कश्मीरी पंडित समाज इसके बिलकुल विपरीत अपने महापुरुषों को न केवल एकदम भुला बैठा है अपितु उनके कार्यों के वर्णन से एकदम पिस्सू की तरह चिटकता है जैसे सांड लाल कपड़े को देखकर भड़क जाता है। हमारे नेतागण भी आपस में तलवार भाँजने को कुछ अधिक ही महत्व दे रहे हैं और समाज के हित की जगह व्यक्तिगत हितों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। जो वास्तव में एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

हम प्रायः अधिकतर अपनी सदियों पुरानी संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं, मान्यताओं, आस्थाओं तथा इतिहास को तिलांजलि देकर पाश्चात्य सभ्यता के खुलेपन और प्रदर्शन को अपनाकर कुछ अधिक गौरवान्वित अनुभव करते हैं। वे वास्तव में इस विकृत मानसिकता के दूरगामी परिणामों से बिलकुल अनभिज्ञ है। जिसके कारण कश्मीरी पंडित समाज तीव्र गति के साथ विघटित हो रहा है और समाज के अन्य वर्गों की तुलना में हमारे समाज में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी होती जा रही है। कुछ व्यक्ति अपनी अज्ञानता में इसे प्रगति का सूचक मान रहे हैं पर इस प्रकार की प्रगति करने का क्या लाभ है जिसके कारण आपकी अपनी पहचान सदा के लिये समाप्त हो जाये और आप लू–लू का दसहरा बन जाये समय रहते इस पर गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है ताकि इस विकराल समस्या के निदान के लिये उपयुक्त उपाय किये जा सकें। अन्यथा कश्मीरी पंडित समाज को लुप्त होने में बहुत अधिक समय नहीं लगेगा।

प्रिय मित्रों इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज का वह वर्ग अपना वर्चस्व बनाने में सफल हो पाता है जो सत्ता के निकट रहता है और जिसका कोई अपना आदर्श और सिद्धान्त हो एक थाली का बैंगन अपनी कोई अहमियत नहीं रखता। वह जिधर ढाल पाता है उधर ही लुढ़क जाता है। बिना किसी ठोस आधार के आज तक समाज में कोई भी वर्ग पनप नहीं सका। भारत में

हूण, कुशान, मुग़ल इत्यादि आये पर सत्ता से बाहर होने के पश्चात कहीं छूमन्तर हो गये। कुछ यही दशा आजकल कश्मीरी पंडितों की है जिनको हर स्तर पर हाशिये से बाहर रखने का प्रयास किया जा रहा है। इसका एक मुख्य कारण उनका आधार विहीन होना तथा उनमें एकजुटता की कमी हो सकती है। पर अपनी इस स्थिति के लिये काफ़ी सीमा तक वे स्वयं जिम्मेदार हैं क्योंकि वे अपने संस्कारों और विशेष गुणों को संजोकर नहीं रख पाये और ज़माने की तड़क–भड़क में बहक गये। वे वह सब किन्हीं कारणों से नहीं अर्जित कर सके जिसके लिये उनके पूर्वज समाज के हर वर्ग से आदर और सम्मान पाते थे और वन्दनीय माने जाते थे।

प्रिय मित्रों समाज के किसी भी वर्ग को वरग़ला कर उसे दिशा विहीन करने में बहुत अधिक समय की आवश्यकता नहीं है पर उस बिगड़े वर्ग को उचित पटरी पर लाने में और उसे उच्च शिखर की ओर अग्रसर करने में कभी–कभी पीढ़ियाँ गुज़र जाती हैं क्योंकि यह प्रक्रिया काफ़ी कठिन है। इसमें दृढ़ इच्छा शक्ति, आत्मबल और संयम की आवश्यकता होती है। यह स्पष्ट है कि बिना किसी निर्धारित लक्ष्य के कुछ प्राप्ति कर पाना बहुत कठिन होता है। सिद्धान्त विहीन व्यक्ति का न तो कोई अपना अस्तित्व होता है और न ही वह समाज को कुछ प्रदान करने की स्थिति में होता है। उसके जीवन का न तो कोई ध्येय होता है और न ही कोई आदर्श। वह केवल दूसरे की दया पर निर्भर रहता है और पृथ्वी के लिये भार बन जाता है। इस अवस्था को निशा गोयल ने अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार प्रकट किया है–

फूल की लाश धूल होती है
प्रेम भंवरे की भूल होती है
धूल की गोद में सोने के लिये
हर कली रोज़ फूल होती है

कश्मीरी पंडित और पलायनवाद

दिल्ली से प्रकाशित कश्मीरियों की एक प्रमुख अंग्रेजी की साप्ताहिक पत्रिका के जनवरी 22–28, 2005 के अंक में एक आलेख प्रकाशित हुआ है जिसमें लेखक ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि क्या वास्तव में कश्मीरी पंडित कायर और भगोड़े हैं और यदि उनको अपनी मातृभूमि से इतना ही लगाव और प्रेम है तो उन्होंने कभी अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिये कोई सकारात्मक संघर्ष क्यों नहीं किया। क्या केवल पांच सितारा सुखमय और आनन्ददायक वातावरण में बैठकर कुछ अन्तराल के पश्चात एक प्रायोजित कार्यक्रम की भांति केवल कुछ प्रस्ताव पारित कर देने से उनका ''होमलैण्ड'' का स्वप्न साकार रूप ले सकेगा या फिर वह मुंगेरी लाल का सिर्फ एक हसीन ख़्वाब बनकर रह जायेगा।

प्रिय बंधुओं लेखक ने कटाक्ष करते हुए एक बहुत ही सटीक प्रश्न उठाया है जिस पर हम सबको अपनी भावनाओं और संवेदनाओं से मुक्त होकर गम्भीर चिंतन और मनन करने की आवश्यकता है ताकि हम उसका उचित समाधान ढूंढ पाने में सफल हो सकें, न कि दिशा–भ्रमित होकर अज्ञानता के अंधेरे में अपने हाथ पैर मारते हुए व्यर्थ में अपना बहुमूल्य समय नष्ट करते रहें और हमारे हाथ में केवल अपनी नियति की रेखाओं के अतिरिक्त कोई ठोस वस्तु न उपलब्ध हो सके। हम केवल एक तोते की भांति अपना रटा हुआ राग अलापते रहें और उचित समय आने पर हमें पता चले कि हमारे हाथ से तोते उड़ चुके हैं।

अब यदि हम बिना किसी लाग लपेट के कश्मीर घाटी के अनमोल इतिहास का गूढ़ अध्ययन करें तो वह निश्चित रूप से सन् 1339 तक कश्मीरी पंडितों का होमलैण्ड था पर जब उत्तर पूर्व से तिब्बत के एक भूटिया सरदार रिंचेन ने उस पर आक्रमण किया तो वहां का हिन्दू शासक सुहदेव अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के स्थान पर युद्ध भूमि से पीठ दिखा कर भाग खड़ा हुआ और वह एक कायर की भांति किश्तवाड़ के जंगलों में जाकर छुप गया और उसके स्थान पर उसके सेनापति रामचन्द्र को अकेले शत्रु से लोहा लेना पड़ा जो

स्वाभाविक रूप से उचित नेतृत्व के अभाव में युद्ध भूमि में वीर गति को प्राप्त हुआ। क्या उस समय उस शासक का युद्धभूमि से पलायन कर जाना उचित था और उसका यह व्यवहार हमारे समाज के युवा वर्ग को क्या प्रेरणा देता है?

यह एक कटु सत्य है कि उस शासक के इस कायरतापूर्ण व्यवहार ने कश्मीरी पंडितों में पलायनवाद की मानसिकता को जन्म दिया जिसके कारण उनमें सामूहिक रूप से संगठित होकर किसी भी मुद्दे पर संघर्ष करने की शक्ति का सदैव के लिये ह्रास हो गया और पलायनवाद को ही भूल से अपना सबसे बड़ा शस्त्र समझने लगे और उस पर गर्व अनुभव कर उसको महिमामंडित करने लगे।

कई कश्मीरी लेखक अपने लेखों में, आलेखों में बड़ी आन, बान और शान के साथ यह प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि अब तब कश्मीर घाटी से मुख्य रूप से सात बार कश्मीरी पंडितों का पलायन हो चुका है और सन् 1990 का कश्मीरी पंडितों का सातवां बड़ा पलायन था। मानो यह भी कोई बहुत बड़ा कीर्तिमान है जिसको उन्होंने बड़ी कठिनाई के साथ स्थापित किया है और जिसके लिये पुरस्कृत करने के योग्य हैं। यदि इसके विपरीत यह 350 लाख कश्मीरी पंडित यदि संगठित और एकजुट होकर भागने के स्थान पर कोई प्रभावशाली संघर्ष करते तो वह कदाचित अब तक एक नये इतिहास की रचना कर चुके होते और उन्हें किसी के आश्रय और संरक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जिस कौम की पालयनवाद मानसिकता बन जाये और जो बहुत समय तक एक स्थान पर टिक न पाये उसके लिये ''होमलैण्ड'' का क्या अर्थ होगा और उसकी क्या उपयोगिता होगी इसको समझने में अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यह भी इतिहास में अपने आपमें एक अनूठा उदाहरण है कि सन् 1990 में लगभग 3.50 लाख कश्मीरी पंडित केवल कुछ सौ आतंकवादियों के भय से बिना कोई संघर्ष किये अपने पूर्वजों की जायदाद को औने–पौने कौड़ियों के भाव बेचकर अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के स्थान पर वहां से चुपके से भाग खड़ा हुआ जिसमें एक भाई को यह नहीं पता चला कि उसका दूसरा भाई कब कैसे और कहां चला गया। यह सब क्या दर्शाता है। कुछ तो अपना रेडियो बजता हुआ छोड़कर चुपके से खिसक गये ताकि उनके परिजनों को उनके पलायन की भनक भी न लगे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में जो कश्मीरी पंडित कश्मीर घाटी से पलायन करके उत्तर भारत के विभिन्न मुख्य नगरों में एकजुट होकर एक स्थान पर बसे और व्यापक समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल हुये उनके वंशज भी कालान्तर में अपने पूर्वजों के द्वारा अर्जित सम्मान और प्रतिष्ठा को उसी प्रकार किन्हीं कारणों से सुरक्षित और संरक्षित नहीं रख सके और या तो उन्होंने अपने पूर्वजों की जायदादों को औने पौने बेचकर अन्य स्थानों पर शरण ली या फिर उनकी विरासत पर समाज के अन्य वर्ग काबिज हो गये जिनका पुरसाहाल अब कोई नहीं है। केवल लखनऊ नगर में कश्मीरी पंडितों की करोड़ों रुपये की जायदादों पर अन्य वर्गों के लोग काबिज हैं और पूरा मजा लूट रहे हैं। लखनऊ कश्मीरी एसोसिएशन भी इन धार्मिक ट्रस्टों के उचित रख–रखाव में कोई विशेष रुचि नहीं ले रहा है।

इस परिप्रेक्ष्य में हमें निष्पक्ष होकर प्रस्तावित होमलैण्ड की मांग की व्यावहारिकता पर गम्भीर चिंतन करने की आवश्यकता है। क्या भारत के संघीय संविधान में किसी जाति विशेष के लिये किसी प्रकार का पृथक् राज्य गठित करने का प्राविधान है और उसके हमारे संघीय ढांचे में दूरगामी परिणाम क्या होंगे। क्या वह जाति विशेष इस प्रकार के गठित राज्य को बाहरी आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम हो सकेंगी जिसकी पलायनवाद मानसिकता बन चुकी हो और जो विपदा या संकट का डटकर सामना करने के स्थान पर मैदान से भाग खड़े होने को अधिक उचित समझती हो।

यहां हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि केवल होमलैण्ड बन जाना ही इस विकराल समस्या का एकमात्र समाधान नहीं है। वह इसके विपरीत कई अन्य नयी और अधिक जटिल समस्याओं को जन्म देगा जिनका निदान कर पाना प्रायः असम्भव हो जायेगा। आर्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण जम्मू तथा कश्मीर राज्य अब भी पूर्ण रूप से केन्द्र सरकार पर निर्भर है। फिर भी प्रस्तावित होमलैण्ड के आर्थिक संसाधन कौन जुटायेगा और वह किस फ़ार्मूले के तहत आत्म निर्भर बन पायेगा या फिर वहां भी लोग तम्बू कनात में रहकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे और आज के भूमण्डलीकरण के युग में वह कितने दिन व्यापक समाज से कट कर इस प्रकार एक संन्यासी की भांति एकान्तवास में रह पायेंगे। क्या इस प्रकार के होमलैण्ड की कल्पना सम्भव है जब आज के युग में हमारे समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आ चुका है और हर व्यक्ति दीवारें खड़ी करने

के स्थान पर उनको गिराने में जुटा हुआ है और सामाजिक बन्धन तीव्र गति के साथ टूट रहे हैं और एक बिलकुल नयी चूं–चूं का मुरब्बा संस्कृति पनप रही है।

प्रिय बन्धुओं अब आवश्यकता इस बात की है कि हम इस तीव्र गति से बदलते हुए सामाजिक परिवेश की नज़ाकत को समझने का प्रयास करें और उसी के अनुसार अपने आचरण को निर्धारित करने का प्रयत्न करें। अब व्यर्थ ऊंटपटांग मांगों को उठा कर हम अपना बहुमूल्य समय बर्वाद न करें जिनका कोई औचित्य न हो और जिनके लिये संघर्ष करने की हममें सामर्थ्य और शक्ति न हो। हम कभी भूलकर भी अपनी तुलना किसी ऐसी कौम से कदापि न करें जिसका संघर्ष करने का एक लम्बा इतिहास हो और जिसने सारे विश्व के सामने अपनी संगठनात्मक शक्ति का अद्‌भुत परिचय दिया हो। हर कौम की अपनी सीमाएँ होती हैं और यदि उनको समझ लिया जाये तो स्वास्थ्य के लिये अधिक उत्तम होता है, उसी में सबका हित निहित होता है। यहाँ हमको यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी घुमन्तू कबीले का कोई होमलैण्ड नहीं होता। उसकी दशा एक नगरपालिका के छुट्टा सांड की भांति होती है जो जहां हरा–भरा चारा देखता है वहीं जाकर चरने लगता है। बेकार की उछल कूद करने से किसी का कोई लाभ नहीं होने वाला। आख़िर कोई कब तक इन करतबों से किसी का दिल बहला सकता है। बेहतर होगा कि हम किसी के जज़्बातों के साथ खेलकर उसको गुमराह न करें। किसी समझदार शायर ने बहुत पहले कहा था कि हिम्मते मर्दां मददे खुदा। आशा है कि सुधी पाठक इसे अन्यथा नहीं लेंगे।

लखनऊ के उभरते हुए शायर खुशबीर सिंह शाद के शब्दों में –

हम अपने दर्द की शिद्दत को कम नहीं करते।
ज़रा सी बात पर आंखों को नम नहीं करते।।
बने बनाये रास्तों पे हम चलते नहीं।
जो लोग करते हैं वह हम करते नहीं।।

कश्मीरी पंडित और ताजमहल

दूरदर्शन पर एक प्रमुख ब्रान्ड के विज्ञापन में विश्व विख्यात तबला वादक ज़ाकिर हुसैन को तबले की टंकार के साथ कई बार वाह ! ताज कहते हुए सुना, पर तब यह आभास नहीं हुआ कि एक दिन यही मुगल सम्राट शाहजहां के अमर प्रेम का प्रतीक जी का जंजाल बन जायेगा। अब मज़े की बात यह है कि उत्तर प्रदेश के सुन्नी वक्फ़ बोर्ड ने ताजमहल पर अपना दावा ठोंक दिया है क्योंकि उसका तर्क है कि उसके परिसर में दो क़ब्रें हैं इस नाते वह उनकी धर्म स्थली है। वहीं उत्तर प्रदेश शिया वक्फ़ बोर्ड का कहना है कि चूंकि मुमताज़ महल उनकी सम्प्रदाय की थी अतः ताजमहल पर उनका हक बनता है।

अब कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह विश्व प्रसिद्ध भारत की सांस्कृतिक धरोहर एक राजनीतिक रंग में रंगने जा रही है। जिसको राजनेता अपने हित में भुनाने के लिये एकाएक क्रियाशील हो गये हैं। बजरंग दल के संस्थापक अध्यक्ष विनय कटियार ने बादशाहनामा का हवाला देते हुए साफ कर दिया है कि ताजमहल वास्तव में तेजोमयी महल था जिसका निर्माण जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने किया था और जिसके प्रांगण में कभी एक भव्य शिव मन्दिर था। वहीं विश्व हिन्दू परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष अशोक सिंहल ने ताजमहल के परिसर में ओंकारेश्वर मन्दिर के अवशेष होने की बात कही है और वास्तविकता की खोज करने के लिये कार्बन डेटिंग कराने की मांग उठायी है ताकि किसी सही निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके।

यहां पर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कई वर्ष पूर्व पी.एन. ओक ने वृहद शोध कार्य करके ''ताजमहल इज़ ए हिन्दू पैलेस'' नाम से एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया था कि ताजमहल एक प्राचीन हिन्दू महल था जिसको मुगल शासक शाहजहाँ ने एक मकबरे में परिवर्तित कर दिया।

यहां पर मूल प्रश्न इस विश्व विख्यात सांस्कृतिक धरोहर के स्वामित्व का नहीं है अपितु देश की सम्प्रभुता तथा उसके स्वाभिमान का है और इस प्रकार

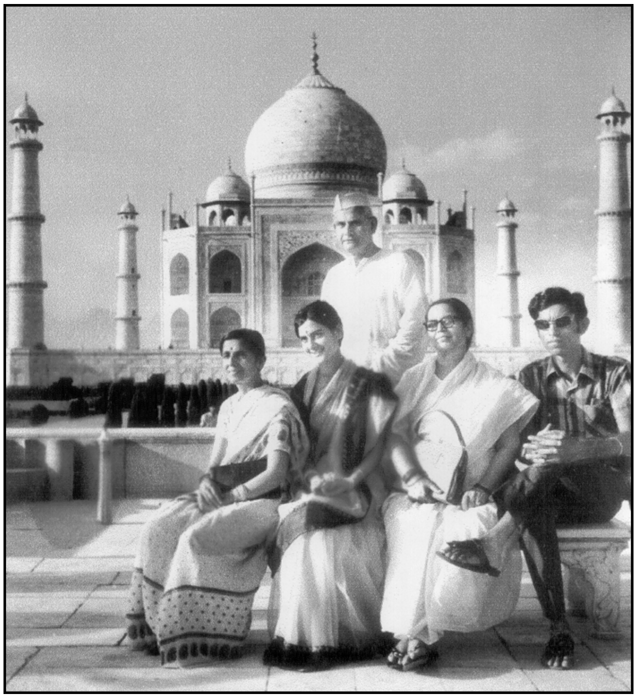

रुपहुक्कू, राजवांती शर्गा, सुरबाला शर्गा,
डॉ. बी.एन. शर्गा और डॉ. हरिहर नाथ हुक्कू ताज महल में 1971

की अनुचित एवं तर्कहीन मांगों के दूरगामी परिणामों का है। यदि देश में इस प्रकार का सिलसिला एक बार आरम्भ हो गया तो उसका अन्त कहां पर होगा। क्या अब भारत सरकार की देश के प्रति अपना दायित्व निर्वाह करने की इच्छा शक्ति समाप्त हो चुकी है या फिर उसकी इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति अब भी शेष है ताकि इस प्रकार की बेतुकी मांगों पर समय रहते उचित अंकुश लगाया जा सके। क्योंकि लिबलिब नीतियों द्वारा किसी भी देश का शासन बहुत अधिक समय तक नहीं चलाया जा सकता और कभी कभी देश हित में कठोर निर्णय लेने को बाध्य होना पड़ता है ताकि बिखराव की स्थिति न उत्पन्न होने पाये।

विगत कुछ वर्षों से भारत सरकार अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बहुत अधिक आतुर है और उस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण एक पक्षीय निर्णय भी कर चुकी है जिनमें से एक मुज़फ़्फ़राबाद–श्रीनगर

के मध्य पुनः लगभग 57 वर्ष पश्चात सड़क मार्ग स्थापित करना है ताकि सीमा के दोनों ओर के नागरिक अपने परिजनों से बिना किसी कठिनाई के मिल सकें। पर इसका हमारे देश की आन्तरिक सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा इस पर कदाचित अधिक मंथन करने की अभी आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारे लिये अपने पड़ोसी से मैत्री बनाये रखना अधिक आवश्यक है चाहे उसके लिये हमें कोई भी कुर्बानी देने को क्यों न बाध्य होना पड़े।

यहां पर सुधी पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि पाक अधिकृत कश्मीर में कृष्ण गंगा के तट पर कश्मीरी पंडितों की आस्था का प्रतीक मां शारदा देवी का पवित्र मन्दिर स्थित है जहां प्राचीन समय में विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय शारदा पीठ था जहां संसार के विभिन्न देशों से विद्वान वैदिक संस्कृत में कश्मीरी पंडितों से शास्त्रार्थ करने आते थे क्या दोनों देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की इस प्रक्रिया में कश्मीरी पंडितों को मां शारदा देवी के दर्शन करने की अनुमति मिलेगी जिस प्रकार प्रतिवर्ष सिख समुदाय के जत्थे अपनी आस्था के पवित्र स्थल ननकाना साहिब के दर्शन करने के लिये पाकिस्तान जाते हैं या फिर यह सम्बन्ध स्थापित करने की नीति केवल एक धर्म विशेष के हित को ध्यान में रखकर उसको प्रसन्न करने के लिये अपनायी गयी है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि जहां एक ओर जम्मू–कश्मीर राज्य की सरकार अपने अल्पसंख्यक समुदाय की समस्याओं के प्रति उदासीन है वहीं दूसरी ओर भारत सरकार अपने अल्पसंख्यक समुदाय की तर्कविहीन मांगों को भी पूरी गम्भीरता के साथ अध्ययन करती है और उनके निदान के लिये सदैव तत्पर रहती है चाहे उसके लिये उसको संविधान में अमूल चूक परिवर्तन ही क्यों न करना पड़े क्योंकि सरकार उनकी वोट बैंक की उपयोगिता को भली भांति समझती है। अतः उसका यही प्रयास होता है कि अपने अल्पसंख्यकों को हर प्रकार से प्रसन्नचित्त रखा जाये क्योंकि उसी में उसका हित निहित होता है चाहे केन्द्र में किसी भी राजनीतिक पार्टी की सरकार क्यों न हो। कश्मीरी पंडित न कभी वोट बैंक रहा और बिखराव के कारण न ही भविष्य में उसके वोट बैंक बनने की कोई आशा है अतः उसको हर तरफ़ से हाशिये के बाहर कर दिया जाना स्वाभाविक है चाहे उसकी मांगे कितनी भी तर्कसंगत और न्यायोचित क्यों न हों। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कश्मीरी पंडित

विस्थापितों को घाटी में पुनः बसाने का आश्वासन तो अवश्य दिया पर यह प्रक्रिया कब और कैसे सम्भव हो पायेगी इसका किसी को कोई पता नहीं।

प्रिय बन्धुओं यदि यह क्रम यों ही चलता रहा तो हो सकता है कि कल को कोई अलगाववादी संगठन तख़्त–ए–ताऊस मांग बैठे। वैसे भी देश के हर कोने में कब्रे, मजार, दरगाह और मकबरे हैं तो क्या सम्पूर्ण देश को वक्फ की सम्पत्ति घोषित कर दिया जायेगा। अभी हाल ही में लखनऊ के एक प्रख्यात धर्मगुरु ने सारे शहर को वक़्फ़ की सम्पत्ति बता दिया था तो फिर उन ज़मीनदारों और ताल्लुक़दारों का क्या होगा जिनकी जायदादो को सरकार ने सन् 1950 में ज़मीनदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत अधिग्रहीत कर लिया था और देश के अनेक नवाबों, राजाओं और महाराजाओं को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया था। क्या इतिहास लोकतंत्र में सामन्तशाही युग को पुनः दोहरायेगा और दिल्ली पर किसी मुग़ल शासक का राज पुनः स्थापित होगा। आख़िर इन बेतुकी मांगों का अन्त कहां होगा। क्या अब देश में लोकतंत्र के दिन लद चुके हैं और हमें कुशल शासन के लिये किसी अन्य व्यवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। किसी समझदार शायर ने बहुत पहले कहा था–

ज़ाहिद शराब पीता है मस्जिद में बैठकर।
या वह जगह बता दे जहां खुदा न हो।।

कश्मीरी पंडित और लोकशाही

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों से राजशाही की एक लम्बी परम्परा रही है। हमारे धर्म ग्रन्थों में इन राजाओं और महाराजाओं के कार्यकलापों का विस्तार से गुणगान किया गया है। अनेक लेखकों और कवियों ने लोक कथाओं में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से इन राजाओं और महाराजाओं की वीरता, शौर्य, साहस और पराक्रम का उल्लेख किया है और उनको महिमामण्डित किया है। कुछ नरेशों को ईश्वर का अवतार मानने तक की अवधारणा भी हमारे देश में रही है और उनको पूज्यनीय माना गया है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थ मार्कण्डेय पुराण में राज धर्म कथन के अन्तर्गत स्पष्ट लिखा है कि राज्याभिषेक होने पर धर्मानुसार प्रजा को सुखी रखना ही राजा का प्रथम कर्तव्य है और यह आश्चर्य की बात नहीं कि इस प्रकार के गुणवान राजा हमारे देश में हुए हैं जिनकी कीर्ति हज़ारों वर्ष बीत जाने के पश्चात भी आज भी विद्यमान है और उनका स्मरण कर लोग प्रेरणा लेते हैं। प्राचीन समय में राजा की अवधारणा प्रजा को कुशल शासन प्रदान करने, सामाजिक न्याय दिलाने, जनता के जीवन स्तर में सुधार लाने तथा व्यापक समाज में सद्‌भाव और शान्ति बनाये रखने के उद्‌देश्य से की गयी थी। हमारे ऋषियों तथा मुनियों ने राजा के अधिकारों और कर्तव्यों की विस्तार से व्याख्या की है जिसके गूढ़ अध्ययन से हमको इस बात का आभास होगा कि वास्तव में राजा का अधिकार कुछ भी नहीं है जबकि उसके कर्तव्यों की एक लम्बी सूची है। उस काल खण्ड में राजा का पद कर्तव्यों के निर्वहन को ध्यान में रखकर सृजित किया गया था न कि अपने लिये अधिकार जुटाने और धन संचय करने के उद्‌देश्य के लिये। जो राजा अपने धर्म का उचित पालन नहीं करता और बिना चोरी करने वाले को चोर की भाँति समझता है और जो वास्तव में चोर है उसे चोर की भाँति नहीं देखता है और इसका ठीक विचार न करके हर समय घात किया करता है तथा भोग विलास में लिप्त रहता है वह भविष्य पुराण के उत्तर पूर्व में लिखे हुए कथन के अनुसार नरक का गामी होता है।

भारतवर्ष एक लम्बी गुलामी के बाद सन् 1947 में बिना कोई गोली दाग़े स्वतंत्र तो अवश्य हुआ पर उसकी क़ीमत हमको देश का धर्म के आधार पर बँटवारा करके चुकानी पड़ी और इस प्रकार पाकिस्तान के नाम से एक नया देश वजूद में आया। हमारे उस समय के देश के कर्णधारों ने देश का शासन चलाने के लिये सदियों पुरानी राजशाही के स्थान पर लोकशाही को चुना यद्यपि हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश में रामराज्य स्थापित करने की कल्पना की थी पर कदाचित वह यह भूल गये कि मर्यादा पुरषोत्तम श्रीराम के युग में राजशाही थी न कि लोकशाही।

हमारे देश के राजनेताओं ने देश का शासन कुशलतापूर्वक चलाने के लिये संसदीय प्रणाली को अपनाया और अनेक लोकतंत्र देशों के संविधानों का गूढ़ अध्ययन करके भारत के संविधान की रचना की जिसमें सदियों से शोषित तथा पिछड़ी जातियों को प्रोत्साहन देकर समाज की अन्य जातियों के समकक्ष लाने के लिये 10 वर्ष तक उनको आरक्षण प्रदान करने का प्राविधान किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य देश में एक समतामूलक समाज का निर्माण करना था जिसमें जाति, धर्म या किसी वर्ग के आधार पर किसी प्रकार का समाज में भेदभाव नहीं रहे और सबको एक समान प्रगति करने और अपनी प्रतिभा को दर्शाने का अवसर प्राप्त हो। पर यदि हम निष्पक्ष होकर अब इसका आंकलन करें तो पिछले 58 वर्षों में हमारे राजनेताओं ने अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिये न केवल अनेकों बार हमारे देश के संविधान में संशोधन किये बल्कि अपने–अपने वोट बैकों को जीवित रखने के लिये आरक्षण के प्राविधान को निरन्तर 10–10 वर्ष के लिये बढ़ाते रहे ताकि समाज के एक वर्ग विशेष पर उनकी पकड़ बनी रहे और उसके वोटों के बल पर वह लोकशाही के नाम पर राजशाही के सुखों का भरपूर आनन्द लेते रहें और उनकी शान–शौकत में किसी प्रकार की कोई कमी न आने पाये।

यहाँ पर विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि आरक्षण प्रदान करने के लिये देश के आजाद होने के बाद जो पिछड़ी जातियों की सूची बनी थी उसमें हर वर्ष निरन्तर और नयी–नयी जातियाँ को भी राजनीतिक लाभ के लिये सम्मिलित किया जाता रहा है। जिसके कारण यह सूची समाप्त होने के स्थान पर निरन्तर बढ़ती जा रही है और हर वर्ष नयी–नयी जातियाँ आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के लिये अपना नाम इस सूची में फिट कराने की जुगाड़

में संलग्न रहती हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि अब कुछ राजनेता धर्म के नाम पर मुसलमानों तथा ईसाईयों को भी आरक्षण प्रदान करने की पुरज़ोर वकालत करने लगे हैं। यह सब स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि वास्तव में हमारा देश किस दिशा में प्रगति कर रहा है। क्या हमारे देश के निर्माताओं ने इसी प्रकार के धर्मनिरपेक्ष और समतामूलक समाज की कल्पना की थी। हमारा देश इस आरक्षण के मकड़जाल से कब पूर्ण रूप से मुक्त हो पायेगा इसका उत्तर इस समय किसी के पास नहीं है या पिछड़ी जातियों का यह तथाकथित पिछड़ापन कितने वर्षों के पश्चात समाप्त होगा या फिर उसकी रावण की आंत की भाँति कोई समय सीमा नहीं है।

सबसे अधिक मज़े की बात यह है कि अब हमारे कुछ नेतागण कारपोरेट जगत में भी आरक्षण प्रदान करने की बात कर रहे हैं। जिसके लिये वह अनेक तर्क और कुतर्क दे रहे हैं। मण्डल और कमण्डल के इस राजनीतिक खेल में अनेक मेधावी और प्रतिभावान नवयुवकों और नवयुवतियों का तेल निकल रहा है। देश के होनहार रत्न निराशा और हताशा का शिकार होकर अन्य देशों को पलायन कर रहे हैं ताकि वह अपनी प्रतिभा को दर्शा सकें। हम विद्वान व गुणी व्यक्तियों के स्थान पर स्तरहीन तथा जुगाड़ू व्यक्तियों को तरजीह दे रहे हैं। क्या कोई देश सही मायने में इस प्रकार की घातक नीति अपना कर उन्नति कर सकता है। क्या इस प्रकार की लबड़ धौंधौं ज्यादा समय तक चल सकती है।

विश्व के अनेक अफ्रीकी देश भारत की तुलना में अब भी बहुत अधिक अविकसित हैं और उनमें से अनेक देश भारत के बाद स्वतंत्र हुए हैं। उनमें से अनेक देशों में आदिम जातियाँ निवास करती हैं पर उनमें से किसी भी देश में किसी भी प्रकार का कोई आरक्षण का प्राविधान नहीं है जिस प्रकार भारत में लागू है और जिसका पूरा लाभ कुछ राजनेता अपनी नेतागिरी को चमकाने में ले रहे हैं जिसका अब आज़ादी के 58 वर्षों के उपरान्त वास्तव में कोई औचित्य नहीं है और जो समाज को जोड़ने के स्थान पर बाँटने का कार्य कर रहा है। कोई भी नेता अब देश में एक समान नागरिक संहिता लागू करने की बात नहीं करता। देश में हर चीज़ अब बिकाऊ हो चुकी है जो वास्तव में एक चिन्ता का विषय है। यहाँ पर सबसे विचित्र बात ध्यान देने के योग्य यह है कि हमारे देश में अनेक पिछड़ी जातियों के राजा और महाराजा हुए हैं जैसे छत्रपति शिवाजी महाराज, माधवराव सिंधिया, राजा बिजिलीपासी, चन्द्रगुप्त मौर्य इत्यादि जब

वह अपनी जाति के लोगों का हज़ारों सालों में पिछड़ापन न दूर कर पाये तो वर्तमान आरक्षण नीति क्या कर पायेगी। यह समाज में और अधिक विषमता को प्रोत्साहित करके भ्रष्टाचार की जड़ों को मज़बूत बनाने का कार्य करेगी बाबा साहब अम्बेडकर जिनको दलितों का मसीहा माना जाता है स्वयं किस आरक्षण का लाभ लेकर केन्द्रीय कानून मंत्री और संविधान के निर्माता बने।

विगत माह मेरठ के एक तथाकथित दलित सांसद ने अपनी इकलौती लाडली बेटी की सगाई में केवल 5 करोड़ रुपये व्यय किये जिसमें लगभग 50,000 आमंत्रित गणमान्य नागरिकों ने 150 किस्म के विभिन्न माँसाहारी पकवानों तथा व्यंजनों का ज़ायका लिया। सांसद महोदय ने इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की कि उनके इस व्यवहार से आम जनता की भावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह एक प्रकार से लोकशाही का लबादा पहनकर राजशाही का पूरा मज़ा लूटने के समान था यदि इसी धन को जनता के भले के लिये किसी उपयुक्त योजना में लगाया गया होता तो उसका लाभ अनेक आम नागरिक उठा सकते थे पर ऐसा हुआ नहीं।

वहीं हमारे कुछ राजनेता करोड़ों रुपये व्यय करके अपने जीवनकाल में अपनी प्रतिमायें स्थापित करवा रहे हैं और स्वयं उनका अनावरण कर एक बिलकुल नयी परम्परा और संस्कृति को इस देश में जन्म दे रहे हैं क्योंकि उनको कदाचित इस बात का बराबर भय बना हुआ है कि उनकी मृत्यु के पश्चात उनको कोई पूँछने वाला नहीं होगा क्योंकि जनता की सेवा करने के स्थान पर उन्होंने वह सब किया जिसके बारे में किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोंचा था।

केवल लखनऊ नगर में जनता की गाढ़ी कमायी के करोड़ों रुपये व्यय करके ऐसे नेताओं के भव्य स्मारकों का निर्माण कराया गया और उनकी प्रतिमायें स्थापित की गयीं जिन्होंने लखनऊवासियों के लिये कभी कुछ नहीं किया वहीं दूसरी ओर लखनऊ में जन्मी अनेक नामचीन हस्तियाँ जिन पर विदेशों में लोग शोध कार्य कर रहे हैं और वहाँ उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं पर उनकी जन्मस्थली में उनका स्मारक तो दूर उनका नाम तक लेने वाला कोई नहीं। लखनऊ के लगभग 250 वर्ष पुराने ऐतिहासिक कश्मीरी मोहल्ले का सन् 1994 में नाम बदल कर मौलाना कल्बे आविद वार्ड रखने का आखिर मतलब क्या है। यह किसको रिझाने की कोशिश है।

हमारे एक प्रिय राजनेता ने लोकशाही की उचित रक्षा करने के उद्देश्य से एक मुसलमान को मुख्यमंत्री बनाने का राग अलापना शुरू कर दिया है उनकी राय से एक मुसलमान ही प्रदेश को कुशल और धर्मनिरपेक्ष प्रशासन प्रदान कर सकता है। वास्तव में उनका यह पैंतरा एक वर्ग विशेष के वोटों को अपने पक्ष में कर सत्ता की वैतरणी पार करने का है। उनका यह प्रयोग यदि सफ़ल हो गया तो हो सकता है कि वह अगले चुनाव में देश का प्रधानमंत्री किसी मुसलमान को बनाने का प्रस्ताव रख दें क्योंकि आज तक देश का प्रधानमंत्री कोई मुसलमान नहीं बना है यों तो उनकी बात में काफ़ी वज़न है पर यह वास्तव में लोकशाही का खुला मख़ौल है क्योंकि लोकशाही में चुनाव व्यक्ति की योग्यता और कार्य करने की क्षमता के आधार पर होना चाहिये न कि उसकी जाति और धर्म को आधार मानकर।

अब यहाँ सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि जिस देश की राजनीति धर्म और जाति को आधार मानकर चलती हो ऐसी लोकशाही में कश्मीरी पंडित समाज का क्या स्थान है। यह एक गम्भीर चिन्तन का विषय है। कश्मीरी पंडितों ने सदैव अपने जीवन में शिक्षा को महत्व दिया जिसके कारण जब देश में राजशाही का युग था तो वह अपनी योग्यता और विद्वता के बल पर देश के अनेक दरबारों में उच्च पदों पर आसीन रहे और अपने को सत्ता के केन्द्र बिन्दु के निकट बनाये रखने में काफ़ी सीमा तक सफ़ल भी रहे और उन्होंने अपनी कार्य कुशलता के कारण मान सम्मान भी पाया पर कभी भी उन्होंने अपनी जनसंख्या बढ़ाने पर अधिक ध्यान नहीं दिया। वह कदाचित यह नहीं समझ पाए कि लोकशाही वास्तव में संख्या के आँकड़ों का खेल है और जिस जाति या वर्ग विशेष का जितना बड़ा संख्या के बल पर वोट बैंक का आधार है लोकशाही में सरकार उसी की सुनती है और उसी की माँगों को जायज़ समझती है क्योंकि उसको नाखुश करने पर हाथ में आयी हुई सत्ता के चले जाने का निरन्तर भय बना रहता है और कोई भी राजनेता यह कभी नहीं चाहता कि वह पैदल हो जाये। अब समय आ गया है जब कश्मीरी पंडितों को भी अपनी जनसंख्या के प्रति सजग हो जाना चाहिये और अपनी एकता के महत्व को समझना चाहिये क्योंकि इसी में उनकी भलाई निहित है।

जिस प्रकार एक राजा की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी को राज सिंहासन पर बिठा दिया जाता था ठीक उसी प्रकार एक राजनेता की मृत्यु के पश्चात उसके किसी परिजन को टिकट दे दिया जाता है चाहे उसमें राजनीति

के प्रति कोई लगाव हो या नहीं। इसको हम लोकशाही में राजशाही का घाल मेल कह सकते हैं। इसको राजनीति में वंश वाद या भाई–भतीजा वाद की संज्ञा दी जाती है।

जब मेरे नाना डॉ. कैलास नाथ काटजू उत्तर प्रदेश की प्रथम अन्तरिम सरकार में मंत्री बने तो वह शाम को जनता का हालचाल लेने के लिये हज़रतगंज और कैसरबाग़ में पैदल टहलते थे और पुरानी कौंसिलर्स रेज़ीडेन्स में बहुत सी सादगी के साथ रहते थे। वह अपनी लाखों रुपये की वकालत को छोड़कर जनता की सेवा करने की भावना को लेकर राजनीति में आये थे। आजकल छोटा–बड़ा हर राजनेता पूरे राजसी ठाट–बाट के साथ रहता है और जनता की गाढ़ी कमाई पर ऐश करता है। वह पैदल चलना अपनी तौहीन समझता है। अब नेता का चाल–चलन और चेहरा बिलकुल बदल गया है।

वह पूरे ताम–झाम के साथ कारों के काफ़िले में सैर–सपाटे के लिये निकलता है। यदि उसके आगे पीछे 10–12 बन्दूकधारी न हों तो वह अपने को हल्का महसूस करता है। वह अपने साथ हमेशा कुछ ऐसे झुनझुनों को रखता है जो मौका आने पर उसके इशारों पर बज सकने की क्षमता रखते हों और जो उसकी समाज में हनक बरकरार रखने में उसकी भरपूर सहायता कर सकें। देश में तेज़ी के साथ पनप रहे इस प्रकार के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में क्या कश्मीरी पंडित केवल अपनी संख्या के बल पर देश के किसी भी निर्वाचन क्षेत्र से सांसद, विधायक या फिर सभासद के चुनाव में किसी को विजयी बनाने की क्षमता रखते हैं। निश्चित रूप से वह इस हैसियत में नही है क्योंकि उनका समाज देश में कभी भी वोट बैंक नहीं रहा और न ही निकट भविष्य में इस समाज के वोट बैंक बनने की कोई सम्भावना प्रतीत होती है। यह एक मुख्य कारण है कि इस समाज को देश की लोकशाही में हाशिये के बाहर कर दिया गया है। जो समाज देश की वर्तमान परिस्थितियों में देश के राजनीतिक फ़लक से ओझल हो जाये या उसकी देश की राजनीति में महत्ता एकदम समाप्त हो जाये तो उस समाज का भविष्य क्या होगा इसको भलीभाँति समझने के लिये किसी को भी बहुत अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिये। वर्तमान समय में कोई भी समाज देश की राजनीति से एकदम कटकर बहुत अधिक समय तक अपने अस्तित्व को बचाये रखने में सफ़ल नहीं सिद्ध हो सकता।

क्या हमारे देश के निर्माताओं ने कभी यह सोंचा था कि देश की राजनीति का स्तर एक दिन इतना गिर जायेगा और राजनेताओं को इतना अधिक नैतिक पतन हो जायेगा कि देश की राजनीति पर बाहुबली, थैलीशाह और माफ़िया सरग़ना हावी हो जायेंगे और देश की सर्वोच्च लोकतंत्र की संस्था में ऐसे व्यक्ति चुनकर आने लगेंगे जिन पर देश की विभिन्न अदालतों में अपराधिक मुकदमें चल रहे हों। यह लोकशाही का एक विकृत स्वरूप है। आज के युग में यदि कोई नेता पद पा जाता है तो वह जनता की सेवा करने के स्थान पर उसी का शोषण करने में जुट जाता है। वह पहले स्वयं का फिर अपने परिजनों तथा आसपास के मित्रों को सुखी और सब प्रकार से समृद्ध करने में जुट जाता है। वह वास्तव में कलयुग में अपनी ही जनता को दुःखी करने का कारक बनता है। वह ऐसे कार्यों में संलग्न हो जाता है जिनके कारण जनता के दुःख दूर होने के स्थान पर उसके कष्ट बढ़ जाते हैं। वास्तव में वह आम जनता के एक विशेष सम्पन्न वर्ग को ही और अधिक सुखी और वैभवशाली बनाने में लिप्त हो जाता है।

यह एक दुःख का विषय है कि राजनीति का अब पूर्ण रूप से व्यवसायीकरण और अपराधीकरण हो चुका है। यह अब एक मिशन न होकर मात्र धन संचय करने का एक साधन बनकर रह गयी है। यही कारण है कि निर्भय गूजर बिना किसी भय के विभिन्न समाचार चैनलों पर संसद में जाने की बात करता है और फूलन देवी की मिसाल देता है। इसी बात से कदाचित खिन्न होकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख कु.सी. सुदर्शन जी ने वर्तमान राजनीति की तुलना एक वेश्या से कर डाली जो अपने ग्राहक को लुभाने के लिये नित्य नया रूप अपनाती है जिस प्रकार एक नेता मौसम का मिज़ाज भांपकर अपना उल्लू सीधा करने के लिये गिरगिटान की तरह अपना रंग बदलता है। उसकी दशा एक बे पेंदे के लोटे के समान होती है जो जैसा मौक़ा देखता है उसी ओर लुढ़क जाता है क्योंकि अब सेवा भाव कम और शो बाज़ी ज्यादा है।

दरअसल आज एक राजनेता का अपने सुख और ऐश्वर्य के लिये संसाधन जुटाना एक आम बात हो गयी हैं अपने सम्बन्धियों के नाजायज़ पोषण के लिये अपने पद का दुरूपयोग उसकी कार्यशैली का एक अभिन्न अंग बन चुका हैं भ्रष्टाचार को अब एक भूमण्डलीय चमत्कार बताया जाता है जो विश्व के हर देश में विद्यमान है और एक आवश्यक दोष है। पर हमें यह कभी नहीं

भूलना चाहिये कि खोटे सिक्कों का कभी कोई अपना अस्तित्व नहीं होता। वे बाज़ार में रहते और चलते हैं तो केवल इसलिये कि बाज़ार में असली सिक्के मौजूद हैं जिनकी आड़ में वह अपना कारोबार चलाते हैं। जिस दिन बाज़ार में असली सिक्के नहीं रहेंगे इन खोटे सिक्कों की कीमत दो कौड़ी की हो जायेगी और उनको चलाना प्रायः असम्भव हो जायेगा और यह भय ही एक मुख्य कारण है कि आज भी यदि कोई नेता कुर्सी पर बैठता है तो वह शपथ जनता को लूटने की नहीं अपितु न्याय की तथा जनता के हित में कार्य करने की ही लेता है। अब कुछ अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भी जिनका जीवन में कभी राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं रहा हमारे देश की संसद की शोभा बढ़ा रहे हैं। वह जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप अपने को सिद्ध कर पाने में सफ़ल हो पायेंगे या नहीं यह अभी आंकलन करना बहुत कठिन है। मुम्बई में भीषण बाढ़ के समय जब वहाँ की आम जनता त्राहि–त्राहि कर रही थी तो वहाँ के अभिनेता और हीरो नम्बर वन सांसद किसी को कहीं नज़र नहीं आये क्योंकि वह बेचारे स्वयं बाढ़ की चपेट में आ गये थे।

मेरी बहन श्रीमती इन्दिरा प्रियदर्शिनी नेहरू गाँधी ने एक नया राष्ट्र बंग्लादेश बनवा दिया पर अब देश में इतना दमदार नेता कोई नज़र नहीं आता। कभी–कभी लगता है कि जैसे देश में साहसी और कठोर निर्णय लेने वाले नेताओं, जो राष्ट्र का सही मार्गदर्शन कर सकें का आकाल पड़ गया है जिसके कारण देश उचित दिशा में प्रगति नहीं कर पा रहा है और हर स्तर पर मूल्यों में तीव्र गति के साथ गिरावट आ रही है।

देश में कानून और व्यवस्था बुरी तरह से चरमरा चुकी है। हर तरफ़ एक अजब लबड़–झबड़ की स्थिति है। जिसकी जो समझ में आ रहा है वह कर रहा है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो रही हैं विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ता आपस में सिर फुटव्वल कर रहे हैं। किसी पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं है। एक विचित्र प्रकार का हर ओर आरजकता का माहौल है और लोग अपनी मनमानी कर रहे हैं। जिसके कारण उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को विवश होकर देश में अदालतों को बन्द करने तथा नेताओं के पर कतरने की बात कहनी पड़ी। यह सब इस बात का स्पष्ट संकेत है कि अब देश में लोकशाही के दिन लद चुके हैं।

अब मूल प्रश्न यह है कि क्या भविष्य पुराण के कथन के अनुसार इस कलयुग में एक कलंकी अवतार जन्म लेगा जो देश में वास्तव में एक भयमुक्त

तथा भ्रष्टाचार रहित समाज का निर्माण करेगा या फिर हमें इस लचर लोकशाही के स्थान पर गम्भीरतापूर्वक किसी ऐसी नई व्यवस्था के बारे में गूढ़ चिन्तन करना होगा जो देश को वोट की आढ़ में धर्म, पंथ, जाति, वर्ग तथा सम्प्रदाय में बाँटने के स्थान पर वास्तव में समतामूलक समाज का निर्माण करने में सक्षम हो और जिसमें सही अर्थ में सबको एक समान बिना किसी भेदभाव के उचित न्याय मिले सके। इस संदर्भ में कृष्ण कुमार नाज़ की निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं।

हौंसले जब दिल में मचलते हैं।
रास्ते तब ख़ुद–ब–ख़ुद निकलते हैं।।

कश्मीरी पंडित और माया की चकाचौंध

हमारे धर्म ग्रन्थ वास्तव में महान ऋषियों तथा मुनियों द्वारा जीवन पर्यन्त किये गये प्रयोगों के तार्किक तथा वैज्ञानिक विश्लेषणों पर आधारित है। जिनमें हर विषय की सविस्तार व्याख्या की गयी है। इन धर्म ग्रन्थों में कही गयी बातों का सही अर्थ निकाल कर उस पर टीका टिप्पणी करना वास्तव में हर व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। उसके लिये गूढ़ अध्ययन तथा उसी स्तर का ज्ञान परम आवश्यक है। हर ग्रन्थ के एक एक श्लोक में बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ जीवन के सार का वर्णन किया गया है जो गागर में सागर को भरने के समान है। ज्ञानी व्यक्ति एक एक श्लोक की व्याख्या करने में और उनमें निहित जीवन के मूल मंत्र को समझने में अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं पर फिर भी उनकी तृष्णा पूर्ण रूप से तृप्त नहीं हो पाती है। वह जितनी डुबकी लगाते हैं तो उन्हें पता चलता है कि ज्ञान के इस सरोवर की कोई सीमा नहीं है और उन्हें बहुत लम्बा सफ़र तय करना है पर यहां मुख्य प्रश्न यह है कि इस मायावी संसार में कितने व्यक्ति अपने धर्म ग्रन्थों में परिभाषित आदर्शों और नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में महत्त्व देते हैं और उसी के अनुरूप अपने आचरण को ढालने का प्रयास करते हैं। जीवन के इन गूढ़ रहस्यों को समझने के लिये स्वभाविक रूप से उसी स्तर का ज्ञान–बोध भी होना आवश्यक है। अन्यथा यह सारा कथन भैंस के आगे बीन बजाने के समान होगा जो बीन के स्वरों का आनन्द लेने के स्थान पर खड़ी–खड़ी पघुराती है। यहां पर सबसे परेशानी की बात यह है कि यहां कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने दिमाग की खिड़कियों को हमेशा बन्द रखते हैं कि कहीं उसमें ताज़ी हवा न घुस आये।

हमारे धर्म ग्रन्थ स्कन्द पुराण में शिव पूजन महात्म्य के अन्तर्गत यह स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि माया केवल विवेकहीन व्यक्ति को ही मोहित करती है। जिस व्यक्ति में पुरुषार्थ और सत्यर्थ है वह इस माया मोह के चक्कर में नहीं पड़ता वह स्वयं अपने कर्मो द्वारा अपने भविष्य का निर्माण करता है वह अपने भाग्य का स्वयं विधाता होता है।

यों तो सतही तौर पर यह सूत्र बहुत ही सरल और सहज प्रतीत होता है पर वास्तव में यह उतना अभूतपूर्व भी है। जिसके लिये हमें यह समझना होगा कि जिस को हम माया कहते हैं वह वास्तव में है क्या। प्रायः हम धन, वैभव, पद प्रतिष्ठा, रूप, सौन्दर्य इत्यादि को ही माया समझ बैठते हैं तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि यदि धन है तो वह है और अगर उसका अस्तित्व है तो वह माया कैसे हो सकता है। अर्थात यदि इस संसार में किसी चीज़ का अस्तित्व है तो फिर वह वस्तु या पदार्थ माया कदापि नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए कह सकते हैं कि सोना सोना है इसमें किसी प्रकार का कोई आंख का धोखा नहीं है और अगर वह सोना है तो वह माया नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति विवेक रखता हो या न रखता हो तो फिर यदि वह किसी वस्तु को देख पा रहा है और उसके अस्तित्व को स्वीकार कर ले तो फिर वह वस्तु किस प्रकार माया हो सकती है।

इसी संदर्भ में स्कन्दपुराण का उपरोक्त सूत्र बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह माया के अस्तित्व पर प्रश्न नहीं उठाता अपितु वह यह स्पष्ट संकेत देता है कि माया विवेकहीन को मोहित करती है। इस सूत्र में दो शब्द बहुत ही अर्थपूर्ण है। वह हैं विवेकहीन और मोहित। विवेकहीन व्यक्ति कौन है निश्चित रूप से जो व्यक्ति अपनी बुद्धि या विचारों द्वारा कोई ठोस निर्णय लेने में अक्षम हो और जो तत्कालिक लाभ हानि की कल्पना न कर सके वह व्यक्ति विवेकहीन कहा जायेगा। मोह का तात्पर्य है कि एकाएक किसी प्रकार की चकाचौंध से प्रभावित हो जाना और उससे इतना अधिक वशीभूत हो जाना कि वह जीवन की सबसे अधिक प्राथमिकता बन जाये और उसके बिना जीवन नीरस लगने लगे। यही अभिलाषा मनुष्य में सारे विकारों को जन्म देती है क्योंकि यह मनुष्य में ऐसी तृष्णा को जागृत करती है जिसको तृप्त कर पाना प्रायः असम्भव हो जाता है और दिल मांगे मोर की अभिलाषा निरन्तर बनी रहती है जिसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं होती।

स्कन्द पुराण के उपरोक्त कथन के सन्दर्भ में हमें गम्भीरतापूर्वक इस बात पर विचार करना चाहिये कि कश्मीरी पंडित आखिर क्यों अब इस माया के पीछे भाग रहा है और अपने सदियों पुराने, अध्यात्म के मार्ग से विचलित होकर भौतिकतावाद की अन्धी चूहा दौड़ में शामिल हो गया है। क्या वह माया रूपी मृग मरीचिका उसके सारे दुःखों का निवारण कर पायेगी या फिर उसके अनेक

कष्टों का कारक बनेगी जिनका आभास कदाचित वह इस समय कर पाने में सक्षम नहीं है और धोखे से यह समझ बैठा है कि हर चमकती पीली वस्तु सोना है।

कश्मीरी पंडित जब तक घाटी में रहा वह वहां के नैसर्गिक सौन्दर्य तथा स्वछन्द वातावरण का भरपूर आनन्द लेता रहा। वह अपनी लगभग 5000 वर्ष प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति से जुड़ा रहा। वह अपनी धार्मिक परम्पराओं तथा मान्यताओं के अनुकूल अपना जीवन निर्वाह करता रहा। उसने सादा जीवन और उच्च विचार के मूल मंत्र को अपने जीवन में आत्मसात किया तथा शिक्षा के महत्त्व को अपने जीवन में उचित प्राथमिकता प्रदान करी। उसने सदा समाज के अन्य वर्गों के सम्मुख अपने को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की ताकि अन्य वर्ग उससे प्रेरणा ले सकें। उसने कुछ इन्हीं मूलभूत गुणों के कारण व्यापक समाज में आदर और सम्मान पाया तथा अपने लिये एक विशिष्ट स्थान बनाया। यदि वह वहीं सब करता जो आज हो रहा है तो क्या वह सब सम्भव हो पाता जो उसने अपने जीवन में अर्जित किया और जिसके लिये वह समाज के हर वर्ग में प्रशंसा का पात्र बना।

कश्मीर घाटी से निकल कर एक बिलकुल नये वातावरण में आने के पश्चात अब कश्मीरी पंडितों के सामने सबसे गम्भीर संकट अपने अस्तित्व को बचाये रखने का उत्पन्न हो गया है। वह यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आखिर वह अब किस मार्ग की ओर अग्रसर हों। कुछ व्यक्ति अपने अतीत से सबक ले कर अपना भविष्य संवारने तथा उसको उज्ज्वल बनाने का प्रयास करते हैं। वही कुछ व्यक्ति पीछे मुड़कर देखने के स्थान पर आगे बढ़ने में विश्वास रखते हैं। इस प्रकार की विभिन्न विचारधाराओं में स्वाभाविक रूप से यह आंकलन कर पाना कि कौन सी विचारधारा को समय की गति के अनुसार उपयुक्त तथा लाभकारी मान लिया जाये प्रायः असम्भव हो जाता है। यह ऊहापोह की स्थिति अनिश्चितता को जन्म देती है जिससे समाज में अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। यही एक मुख्य कारण है कि हमारी युवा पीढ़ी उचित दिशा निर्देशों के अभाव में यह नहीं निर्णय कर पा रही है कि उसे इन बिलकुल नयी परिस्थितियों में अपनी मातृभूमि से सैकड़ों कि.मी. दूर अब किस पथ पर प्रशस्त होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है। क्या वह अपनी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति से जुड़ी रहे या फिर जिस स्थान पर वह अब निवास कर रही है वहां की

स्थानीय परम्पराओं और मान्यताओं को आत्मसात करके उनमें घी खिचड़ी की भांति घुल मिल जाये और अपनी विशिष्ट पहचान को सदा के लिए समाप्त कर दे।

विचारों की इसी आपाधापी और सांसारिक माया की चकाचौंध से प्रभावित होकर हमारे समाज के अनेक नवयुवक एवं नवयुवतियां समाज के अन्य वर्गों के लड़कों तथा लड़कियों के सम्पर्क में आने के पश्चात बिरादरी की स्थापित परम्पराओं तथा मान्यताओं को नकारते हुए प्रेम विवाह कर रहे हैं और उसके पक्ष में अनेक तर्क और कुतर्क प्रस्तुत कर रहे हैं। दूरदर्शन के विभिन्न धारावाहिक भी समाज में एक विकृत संस्कृति को परोस कर न केवल उसको प्रदूषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं अपितु इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध बनाने को प्रोत्साहित भी कर रहे हैं। सलाम नमस्ते जैसी फिल्म में तो बिना विवाह किये लड़के तथा लड़की को एक साथ एक छत के नीचे रहने तथा यौन सम्बन्ध स्थापित कर बच्चे पैदा करने की भरपूर वकालत की गयी है जिसको कदाचित फिल्म के निर्देशक ने एक क्रान्तिकारी कदम माना है। वहीं अनेक धारावाहिकों में एक महिला के एक ही समय में कई पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने को महिमामण्डित किया जाता है। जिसका अनुसरण कई विवेकहीन नव युवक और नवयुवतियां अपने जीवन में करते हैं और जिसके कारण अनेक संयुक्त परिवार टूट कर इधर उधर बिखर रहे हैं और अनेक घर बर्बाद हो रहे हैं।

ग्लैमर और माया की इस चकाचौंध ने अनेक कश्मीरी पंडित परिवारों को अपनी लपेट में ले लिया है। जिसके दुष्परिणाम अब धीरे धीरे छन–छन कर हमारे सामने आ रहे हैं। विगत कुछ वर्षों में बिरादरी में विवाह के उपरान्त तलाक दिये जाने के मामलों में अचानक तेज़ी आयी है। विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात की गयी सूचना के आधार पर केवल जम्मू में लगभग 300 तलाक के मामले वहां की विभिन्न अदालतों में लम्बित हैं। यह क्या संकेत देता है क्या हम वास्तव में एक सही दिशा की ओर अग्रसर हैं या फिर हम स्वयं अपने को तथा अपने अस्तित्व को नष्ट करने पर आमादा हैं और अगर इस प्रकार का रवैया अधिक समय तक चलता रहा तो आखिर हमारा हश्र क्या होगा।

गुजरात के एक बाहुबली बृजेश बजरंगी ने यह फरमान जारी कर दिया है कि यदि गुजरात की कोई पटेल लड़की किसी अन्य जाति के लड़के के

साथ अपना विवाह रचायेगी तो उससे सख्ती से निपटा जायेगा। बजरंगी के इस आदेश के बाद गुजरात से इस प्रकार के प्रेमी युगल या तो भाग खड़े हुये हैं या फिर उनकी सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी है। बजरंगी के फरमान से एक संदेश यह मिलता है कि सभाज में अनुशासन को बनाये रखने के लिये भय आवश्यक है। और भयमुक्त समाज प्रायः अनुशासनहीन हो जाता है जहां जो जिसकी समझ में आता है वह वह करता है चाहे उसका परिणाम व्यापक समाज के हित में हो अथवा नहीं इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य पैदा तो स्वतंत्र होता है पर उसको सामाजिक बन्धनों में बंधकर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है अन्यथा सारे समाज का स्वरूप ही छिन्न–भिन्न हो जायेगा।

यहां पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है कि जिस उत्साह एवं भक्ति भाव के साथ सामूहिक तौर पर गुजराती गरबा खेलते हैं और डांडिया नृत्य करते हैं, मराठी गणेश चतुर्थी मनाते हैं, मैसूरवासी दशहरा मनाते हैं, बंगाली मां दुर्गा की पूजा अर्चना करते हैं, विस्थापित सिन्धी समाज अपना चेटी चांद का पर्व मनाता है, पंजाबी बैसाखी पर बल्लै–बल्ले गाकर भांगड़ा नृत्य करता है क्या कभी कश्मीरी पंडित समाज ने अपना कोई पर्व मनाया या फिर इतने बड़े पैमाने पर उसका प्रचार और प्रसार किया कि समाज के अन्य वर्ग या सरकार उसको जान सके कि हां अमुक पर्व कश्मीरी पंडितों का है। जहां तक मेरी जानकारी है ऐसा कभी नहीं हुआ। यहां सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि हमारी नयी पीढ़ी में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे नवयुवक और नवयुवतियां है। जिनको अपने उत्सवों तथा पर्वों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उन्हें विधि विधान पूर्वक पूरी श्रद्धा के साथ मनाने की तो बहुत दूर की बात है। इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है। क्या हम अपनी नयी पीढ़ी को वह संस्कार दे पा रहे हैं जो हमने अपने पूर्वजों से ग्रहण किये तो फिर ग़लती किसकी है।

बिहार में छठ पर्व बहुत बड़े पैमाने पर मनाया जाता है अब बिहारियों की बहुत बड़ी संख्या में मुम्बई में बसने के पश्चात वहां भी छठ पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाने लगा है जिसमें सहस्त्राब्दी के महानायक अमिताभ बच्चन जैसे व्यक्ति शिरकत कर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। मुम्बई में एक लम्बे समय से अनेक कश्मीरी पंडित फिल्म जगत से जुड़े हुए हैं और हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न भी हैं पर वहां क्या कभी किसी ने अपना कोई भी पर्व इस प्रकार

सामूहिक रूप से आयोजित करने की चेष्टा की जिसके बारे में समाज के अन्य वर्गों को ज्ञान हो सके। इसी सन्दर्भ में सुधी पाठकों को यह बताना अनुपयुक्त न होगा कि लखनऊ के कश्मीरी पंडितों ने सन् 1856 में नवाबी शासन के पतन के पश्चात तीव्र गति के साथ बदलते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अपनी बिरादरी की एकजुटत को बनाये रखने के उद्देश्य से कश्मीर के 17वीं सदी के महान सन्त ऋषि पीर की पावन स्मृति में ऋषि पीरका जाग के नाम से प्रति वर्ष एक बहुत बड़े पैमाने पर धार्मिक अनुष्ठान प्रारम्भ किया जो सामूहिक पर्व एक सप्ताह चलता था और जिसमें यज्ञ के साथ–साथ सायंकाल को बिरादरी के मनोरंजन के लिये विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते थे और उसके पश्चात एक सामूहिक भोज का प्रबन्ध होता था जिसमें बिरादरी के सदस्य कश्मीरी व्यंजनों का भरपूर ज़ायका लेते थे। पर कुछ वर्षों के उपरान्त आपस में वैचारिक मतभेदों के उत्पन्न हो जाने के कारण आयोजकों को इस महत्त्वपूर्ण सामूहिक पर्व को सन् 1906 में विवश होकर बन्द करना पड़ा तबसे लेकर आज तक लगभग 100 वर्षों में इस प्रकार का आयोजन पुनः प्रारम्भ करने का साहस कोई नहीं जुटा सका।

विगत 10–12 वर्षों में उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु तथा आन्ध्र पदेश के अनेक निवासी नौकरी के कारण लखनऊ में आकर बसे हैं। वह अपने पारम्परिक पर्व बड़ी धूम के साथ मनाते हैं। भगवान जगन्नाथ की शोभायात्रा निकाली जाती है उत्पल पर्व तथा पोंगल पूरी श्रद्धा भाव के साथ मनाया जाता है। उनमें प्रदेश के राज्यपाल आमंत्रित होते हैं। पर नगर के कश्मीरी पंडित समाज में कोई हलचल नहीं होती कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो। इसके पीछे क्या रहस्य है इस पर गम्भीर आत्म मंथन करने की आवश्यकता है।

अब यदि हम कश्मीरी पंडितों के विवाह और उससे जुड़े अन्य संस्कारों की निष्पक्ष व्याख्या करें तो उनमें धार्मिक विधि विधान पर कम और रुपये लुटाने पर अधिक बल दिया जाता है। जो विवाह पहले सादगीके साथ सम्पन्न किये जाते थे और जिनमें बिरादरी के सदस्य फर्श पर पंगत में बैठकर खाना खाते थे वह विवाह अब पांच सितारा होटलों और बड़े बड़े फार्म हाऊसों में आयोजित किये जाते हैं और अलग अलग संस्कार अलग अलग स्थानों पर आयोजित किये जाते हैं जिनमें विवाह एक पवित्र धार्मिक बन्धन के स्थान पर उपभोक्तावादी

संस्कृति का एक कार्निवल या तमाशा बनकर रह गये हैं। हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आखिर यह सब नाटक करके हम क्या दर्शाना चाह रहे हैं और अपने इस कृत्य से समाज के के किस वर्ग को प्रभावित करने में जुटे हैं। यह वास्तव में पराई बदशुगुनी पर अपनी नाक कटाने के समान है। अंग्रेज भी अपना विवाह संस्कार परम्परागत तरीके से चर्च में जाकर करते हैं। हम कौन सी नयी नयी संस्कृतियों और परम्पराओं को आत्मसात कर रहे हैं कदाचित इसका ज्ञान हमको स्वयं नहीं है। हम माया की चकाचौंध में अपनी सुध बुध पूर्ण रूप से खो चुके हैं। हमारे समाज के महान समाज सुधारकों के विचार हमारे लिये अब निरर्थक हो चुके हैं। हम एक बिलकुल नयी घालमेल संस्कृति के जनक, संवाहक तथा पोषक बन रहे हैं। हमें इस बात का तनिक भी आभास नहीं कि माया की इस चकाचौंध के पीछे शोषण का कितना घना काला अंधेरा है।

इस तथाकथित आधुनिकता की अन्धी चूहा दौड़ में और देश के मेट्रोस में तेज़ी के साथ फैल रही उदारवादी तथा उन्मुक्त नव संस्कृति को शीघ्र से शीघ्र आत्मसात कर लेने की होड़ में बिरादरी के कुछ बिगड़े तथा भटके हुए लोग अपनी आर्थिक ताकत को आम जनता को दर्शाने के लिये अब अपनी सालगिरह परम्परागत तरीके से मनाने के स्थान पर पांच सितारा होटलों में अपनी बर्थडे बैश का आयोजन करते हैं और इन पार्टियों में कबाब, शराब तथा शबाब का भरपूर रसास्वादन किया जाता है। यदि यह सब करने के बाद भी उनकी तबियत नहीं भरती है और दिल मांगे मोर का उनको एहसास होता है तो वह फिर अपनी रातों को और अधिक रंगीन बनाने तथा अपने को मदमस्त रखने के लिये कोकीन या फिर किसी अन्य कामोत्तेजक ड्रग का सहारा लेते हैं जो निश्चित रूप से अनेक विकारों को जन्म देती है और वह शीघ्र महाकाल को प्राप्त होते हैं। उनको मृत्यु के पश्चात भी गिलाओं का सामना करने को विवश होना पड़ता है। वह अपनी अनभिज्ञता में कदाचित यह नहीं समझ पा रहे हैं कि उनके यह कृत्य समाज को किस दिशा में ले जा रहे हैं और इस सबका आख़िर में अन्त कहां पर होगा। वह कदाचित यह भूल जाते हैं कि मनुष्य को अर्श से फर्श पर आने में ज्यादा देर नहीं लगती। इसीलिये गुणी तथा विद्वान व्यक्ति सदा सही मार्ग पर चलने की नसीहत देते हैं क्योंकि वही मनुष्य को सत्यम्, शिवं सुन्दरम की अनुभूति कराता है जो भारतीय दर्शन का

मूल मंत्र है बाकी सब मिथ्या है। केवल हवाई बातें करने से समाज का कोई भला नहीं होने वाला। अब आवश्यकता इस बात की है कि धरातल पर कोई ठोस क्रान्तिकारी कार्यक्रम लागू किया जाये जो हमारे अस्तित्व को बचाये रखने में सफल सिद्ध हो सके। क्या हमारे किसी नेता ने या फिर हमारे किसी सामाजिक संगठन ने हमारी संस्कृति के संरक्षण के लिये कभी कोई ठोस पहल की या युवा पीढ़ी में उसके प्रति नव चेतना जागृत करने का कोई साकारात्मक प्रयास किया। हम अपने संस्कारों, परम्पराओं, मान्यताओं, आदर्शों, मूल्यों, रीति रिवाजों, वेशभूषा, खान पान इत्यादि को बहुत पीछे छोड़ चुके हैं। अब तो केवल हमें इस नशवर शरीर को छोड़ना बाकी है। जय शिव शम्भू। ऐसी मानसिकता को भांप कर एक बहुत ही समझदार कवि ने बहुत पहले लिखा था।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं फल लागत अति दूर।।

कश्मीरी पंडित और गंगा–जमुनी तहज़ीब

बाल्यावस्था में अपने पूर्वजों को कई बार यह कहते हुए सुना था कि साहब एक जमाना था जब लखनऊ की गंगा–जमुनी तहज़ीब सारी दुनियाँ में मशहूर हुआ करती थी तो स्वाभाविक रूप से युवावस्था में पदार्पण करने के पश्चात् यह जानने की प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वास्तव में यह गंगा–जमुनी तहज़ीब क्या थी जिसका उस समय इतना गुणगान किया जाता था और देश के अन्य सुसंस्कृत नगरों की तहज़ीब से किस प्रकार भिन्न थी या इसमें क्या ऐसी विशेषता थी जो यह तहज़ीब केवल लखनऊ नगर तक ही सिमटकर रह गई और इसका विकास देश के अन्य महानगरों में किन्हीं कारणों से सम्भव नहीं हो सका या फिर कोई ऐसी विवशता थी कि समाज के कुलीन वर्ग ने इस गंगा–जमुनी सभ्यता को अन्य स्थानों में विकसित करना उचित नहीं समझा। इस अनूठी संस्कृति का जन्म कब और कैसे हुआ यह अपने आप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण यक्ष प्रश्न है जिसके उत्तर के लिए गूढ़ अध्ययन एवं चिन्तन करने की आवश्यकता है।

भौगोलिक दृष्टि से लखनऊ नगर गोमती नदी के तट पर बसा है और गंगा तथा जमुना नदी से इस ऐतिहासिक नगर का कोई सम्बन्ध नहीं है तो फिर यह तथाकथित गंगा–जमुनी तहज़ीब किस प्रकार इस नगर में पल्लवित और विकसित हुई जबकि वह नगर जो गंगा नदी या जमुना नदी के तट पर बसे हैं इस प्रकार की तहज़ीब से एकदम अछूते रह गये और उन नगरों के समाज ने इस विशेष संस्कृति को व्यापक रूप से अंगीकार नहीं किया जिनकी सभ्यता और संस्कृति लखनऊ नगर की तुलना में बहुत अधिक प्राचीन है। वह प्राचीन नगर इस प्रकार की तहज़ीब से आखिर क्यों वंचित रह गए।

इस सम्बन्ध में काफी गूढ़ अध्ययन तथा शोधकार्य करने के पश्चात् यह जानकारी प्राप्त हुई कि यह बहुचर्चित गंगा–जमुनी तहज़ीब मुख्य रूप से लखनऊ नगर में नवाबी शासन काल में शासकों द्वारा भरपूर पोषित की गयी। अतः इस विशेष तहज़ीब का स्वर्णिम युग 1775 से 1856 के मध्य का अन्तराल माना जा सकता है।

इतिहास की दृष्टि से अवध में नवाबी शासन काल की आधारशिला सर्वप्रथम नवाब सआदत खाँ बुरहानुल मुल्क ने सन् 1722 में रखी जिनको मुगल सम्राट मोहम्मद शाह रंगीले (1719–1747) ने अवध का सूबेदार नियुक्त किया था। उस समय तक लखनऊ एक छोटा सा कस्बा था। जहाँ पर पठानों और शेखों का वर्चस्व था और उनमें नियमित रूप से एक–दूसरे पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए संघर्ष हुआ करते थे। अवध प्रान्त की राजधानी फैजाबाद थी जहाँ अधिकतर राज घराने के सदस्य तथा दरबार में उच्च पदों पर आसीन अधिकारी वर्ग रहता था। लखनऊ नगर में तब तक बुनियादी नागरिक सुविधायें भी नहीं थीं और यह नगर एक प्रकार से लगभग 20 गाँवों का एक समूह था जो एक–दूसरे से काफी दूरी पर आबाद थे जहाँ अधिकतर पिछड़ी जातियाँ निवास करतीं थीं जिनको कदाचित सभ्यता की परिभाषा का भी ज्ञान नहीं था। तो स्वाभाविक रूप से उस समय तक इस गंगा–जमुनी तहज़ीब के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं थी और न ही इस प्रकार की किसी तहज़ीब का चलन प्रारम्भ हुआ था।

नवाब आसफउद्दौला ने सन् 1775 में फैजाबाद के स्थान पर लखनऊ को सर्वप्रथम अवध की राजधानी बनाया और इस नगर के समुचित विकास पर एक बहुत बड़ी धनराशि व्यय की। नगर को एक भव्य तथा आकर्षक रूप देने में उसने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी जिससे प्रभावित तथा आकर्षित होकर देश के अनेक अंचलों से गुणवान व्यक्ति, भाव शिल्पी, लेखक, कवि, शायर, संगीतज्ञ

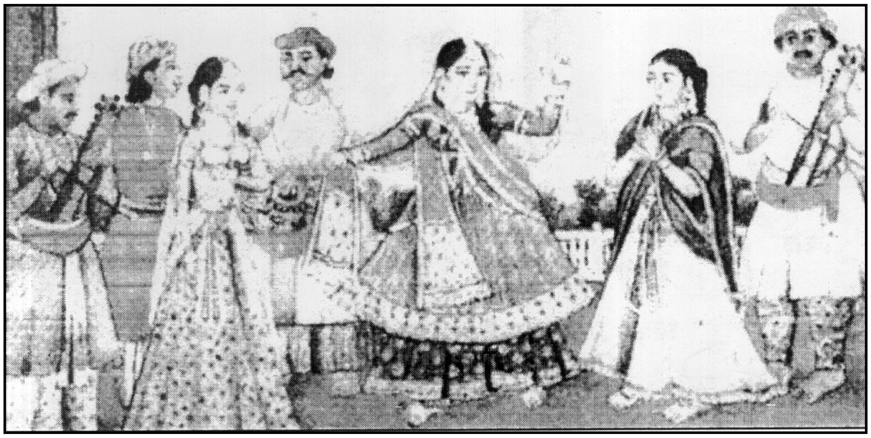

तवायफ़ो के कोठे का एक दृश्य

इत्यादि इस नगर में आकर बसने लगे और उनके मनोरंजन के लिए विभिन्न संसाधन जुटाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ ताकि नगर के बड़े–बड़े रईस, उमरा, दरबारी तथा सामन्त अपने रिक्त पलों को एक खुशगवार वातावरण में व्यतीत कर सकें और साथ ही साथ उनका मनोरंजन भी हो जाए। इसी क्रम में देश के विभिन्न अंचलों से और मुख्य रूप से दिल्ली से जहाँ मुगल शासन काल का पतन प्रारम्भ हो चुका था तवायफों का लखनऊ में आगमन प्रारम्भ हुआ और नगर के मुख्य बाजार चौक में उनके कोठे आबाद होने लगे जहाँ नित्य सायंकाल मुजरों की महफिलें सजने लगीं और नगर के बड़े–बड़े रईस और उमरा अपनी हसीन और रंगीन शामें धीरे–धीरे इन्हीं तवायफों के कोठों पर उनकी सोहबत में गुजारने लगे और उन हसीनाओं के हुस्न और शबाब का भरपूर रसास्वादन करने लगे। यह पुरानी कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। उसी के अनुसार इस विकसित हो रही नव संस्कृति ने बहुत कम समय में सारे नगर को अपने प्रभाव में ले लिया और यह रंगीन शामें सारे जहाँ में शामें अवध के नाम से जानी जाने लगीं।

अवध के मनसबदारों और दरबारियों पर इन तवायफों की सोहबत का रंग इस कदर चढ़ा कि वह उनकी आन, बान और शान का एक महत्वपूर्ण अंग बन गयीं। बहुत से बिगड़े रईस और नवाब व्यापक समाज में अपना रूतबा कायम करने के लिए अपनी एक विशेष तवायफ रखने लगे जिसके भरण–पोषण का भार वह स्वयं वहन करते थे और जिसका कार्य केवल उनको मनोरंजन प्रदान करना होता था। किसी अन्य को नहीं। समाज में बड़े–बड़े रईसों का एक तवायफ को रखना एक आम बात थी जो उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का एक प्रतीक माना जाता था और जिसने समाज के एक विशेष वर्ग में नवाबी शासन काल में एक प्रथा का रूप ले लिया था।

इस तीव्र गति से बदलते हुए सामाजिक परिवेश में तवायफें इतनी अधिक प्रभावशाली हो गयीं कि बड़े–बड़े आकाओं और सूरमाओं को अपने इशारों पर नचाने लगीं जो उनके हुस्न और शबाब के दीवाने थे और उनकी सोहबत में आकर अपना सब कुछ गंवाने को सदैव तत्पर रहते थे। समाज के इस विशेष वर्ग के पारिवारिक मामलों में भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने में यह तवायफें एक अहम भूमिका निभाती थीं।

अवध के अनेक शासकों ने भी कुछ चुनिन्दा तवायफों को अपने हरम में आश्रय तथा संरक्षण प्रदान किया जिसके कारण दरबार के राज कार्य पर भी इन तवायफों का धीरे–धीरे प्रभाव पड़ने लगा। कुछ शासक अपना समय राजकाज में कम और इन तवायफों की सोहबत में अधिक व्यतीत करने लगे जिसके कारण शासन और प्रशासन पर उनकी पकड़ शिथिल होने लगी। जिसका पूरा लाभ बाद में अंग्रेजों ने सन् 1856 में उठाया और अवध को बड़ी सुगमतापूर्वक बिना कोई गोली दागे अधिग्रहित कर अपने आधीन कर लिया।

इन तवायफों की अवध के दरबार में इतनी अधिक दखलनदाज़ी हो गयी कि नगर के कुलीन और सभ्रान्त नागरिक अपने पुत्रों को तहज़ीब और तमद्दुन सीखने के लिए तवायफों के कोठों पर भेजने लगे जिसमें परोक्ष रूप से उनका ध्येय इन तवायफों के सम्बन्धों का उचित लाभ उठाते हुए दरबार में अपने पुत्रों को अच्छे पदों पर आसीन कराना होता था और जिस लक्ष्य को प्राप्त करने में वह काफी सीमा तक सफल भी हो जाते थे।

अब यहाँ सुधी पाठकों के लिए यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि एक तवायफ का वास्तव में किसी धर्म विशेष से कोई सरोकार नहीं होता उसके व्यवसाय का मुख्य धर्म केवल अपने ग्राहक को हर प्रकार से मनोरंजन प्रदान कर अलमस्त करना होता है उसके कोठे पर सभी धर्मों की सीमायें और मतभेद स्वयं समाप्त हो जाते थे और सब धर्मों का एक अनूठा संगम देखने को मिलता था। उस काल खण्ड में इस अनूठी विकसित हो रही संस्कृति को गंगा–जमुनी तहज़ीब की संज्ञा दी गई जिसका अभिप्राय मुख्य रूप से विभिन्न संस्कृतियों के इस अनूठे मिलन से था जहाँ हर व्यक्ति के साथ बिना किसी भेदभाव के एक समान व्यवहार किया जाता था।

कश्मीरी पंडितों में अपने को समय तथा वातावरण के अनुकूल ढालने की एक अद्भुत क्षमता होती है। अपने इस विशेष गुण के कारण वह एक लम्बे अन्तराल तक सत्ता के केन्द्र बिन्दु के निकट रहने में अपने को सफल सिद्ध कर सके। अवध में नवाब आसफउद्दौला के शासन काल में बहुत बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडित सीधे कश्मीर और देश के अन्य नगरों से लखनऊ में आकर बसे और वह इस गंगा–जमुनी तहज़ीब के सम्पर्क में आये। यह एक कटु सत्य है कि किसी भी समाज के लिए अपने को एक बिलकुल नये वातावरण और विषम परिस्थिति में स्थापित करना काफी कठिन कार्य होता है। पर कश्मीरी

पंडितों ने अपनी एकजुटता का परिचय देते हुए न केवल अपने को एक बिलकुल नये परिवेश में स्थापित करने में एक अभूतपूर्व सफलता पाई अपितु समाज के विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति भी अर्जित की। यह तभी सम्भव हो सका जब उन्होंने अपनी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति पर इस गंगा–जमुनी तहज़ीब को हावी नहीं होने दिया और विशेष रूप से अपने युवा वर्ग को इसके प्रभाव से मुक्त रखा कश्मीरी पंडितों ने अपनी परम्पराओं, मान्यताओं, सिद्धान्तों, आदर्शों तथा मूल्यों का पूरी निष्ठा के साथ समर्पित भाव से पालन किया और अपने मर्यादित आचरण को बनाये रखा। वह कभी भी अपने निर्धारित लक्ष्य से विचलित नहीं हुये। जिसके कारण वह व्यापक समाज में आदर का पात्र बने और एक लम्बे समय तक अपनी विशिष्ट पहचान को बनाये रखने में सफल सिद्ध हो सके। उन्होंने एकता के महत्व को समझा और उसमें निहित शक्ति को पहचाना। यदि वह वहीं सब करते जो आज हो रहा है तो वह अपने अस्तित्व को बहुत पहले समाप्त कर चुके होते और आज उनका नाम और निशां लेने वाला शायद ही कोई होता। पर कुछ कश्मीरी पंडित अपने को इस गंगा–जमुनी तहज़ीब की चमक–दमक से बचा नहीं पाये और उसी के रंग में पूर्ण रूप से रम गए। इसका परिणाम यह हुआ कि दिल्ली में सन् 1834 में बाजार सीताराम के निवासी पंडित मोहन लाल जुत्शी को बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया और उनको विवश होकर इस्लाम धर्म का अनुयायी बनना पड़ा तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् उनको मुस्लिम रीति रिवाज के अनुसार आजादपुर में दफन कर दिया गया।

इसी प्रकार लखनऊ के पंडित नारायण दास गुर्टू इसी तहज़ीब के मोह में अपने को नवाब नारायण दास लिखने लगे और सन् 1856 में अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अली शाह के साथ अपने परिजनों को कश्मीरी मुहल्ले में राम भरोसे छोड़कर कलकत्ते चले गए और वहाँ एक तवायफ के साथ रहने लगे इसी प्रकार लखनऊ के पंडित संतोष कुमार वांटू इसी तहज़ीब के चक्कर में सन् 2003 में मृत्यु के पश्चात् ऐशबाग़ के कब्रिस्तान में दफना दिये गए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ इस तहज़ीब की लपेट में आकर कई कश्मीरी पंडित अपना अस्तित्व ही गंवा बैठे।

अंग्रेजों ने अपने लगभग 90 वर्ष के शासन काल में बड़ी चतुराई के साथ इस गंगा–जमुनी तहज़ीब को जीवित रखा क्योंकि इसी तहज़ीब ने उनको

अवध पर राज करने का बड़ी ही सुगमता से अवसर प्रदान किया था अंग्रेज चाहते थे कि बड़े–बड़े राजा, महाराजा और नवाब इस तहज़ीब में पूरी तरह से रमे रहें ताकि उनको शासन करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। ओरछा रियासत के महाराजा वीर सिंह नियमित रूप से मशहूर तवायफ मुनीर बेगम का मुजरा सुनने के लिए आते थे पर उसका आशियाना उजड़ने के बाद उसकी बेटी ज़रीना परवीन को अपनी कला को जीवित रखने के लिए मुम्बई जाकर फिल्म जगत का सहारा लेने को विवश होना पड़ा जहाँ इस गंगा–जमुनी तहज़ीब के कुछ प्रबल समर्थकों ने उसको आश्रय प्रदान किया।

सन् 1947 में देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् सर्वप्रथम सरकार ने इस पनप रही गंगा–जमुनी तहज़ीब को नष्ट करने का प्रयास किया जब वेश्यावृत्ति के विरूद्ध कानून बनाया गया और दिसम्बर 1958 में पुलिस ने चौक में तवायफों के कोठों पर छापे डाले और बहुत बड़ी संख्या में तवायफों और उनके कद्रदानों को गिरफ्तार करके जेल में ठूंस दिया। तवायफों के मुताबिक वह वास्तव में कयामत की रात थी जिसने लखनऊ की हसीन शामों का रंग फीका करके उनको एकदम वीरान कर दिया। कुछ शौकीन लोग तो अब भी उस मंजर को याद करके सिहर जाते हैं जिसने एक ही झटके में गुलजार चमन का एकदम नज़ारा ही बदल दिया। इन रस प्रेमियों के सम्मुख अब प्रश्न यह है कि आखिर अब वह जायें कहाँ जहाँ उनको मन की शान्ति प्राप्त हो सके और वह इस सुख का रसास्वादन कर सकें।

उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी के शासन काल में एक मंत्री महोदय ने इस गंगा–जमुनी तहज़ीब को पुनः जीवित कर स्थापित करने का अधकचरा प्रयास अवश्य किया ताकि समाज के एक विशेष वर्ग के वोटों को अपने पक्ष में करके उसका राजनीतिक लाभ लिया जाये पर उनको किन्हीं कारणों से इस कार्य में बहुत अधिक सफलता नहीं मिल सकी और आम जनता ने उनके इस राजनीतिक खेल को एकदम नकार दिया जिसके कारण उनकी पार्टी को चुनाव में आपेक्षित लाभ नहीं मिल सका और पार्टी को प्रतिपक्ष की भूमिका निभाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

आजकल देश में उदारीकरण तथा भूमण्डलीकरण का दौर चल रहा है जिसका प्रभाव समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा कश्मीरी पंडितों पर सबसे अधिक पड़ रहा है जो समाज के अन्य वर्गों की तुलना में अपने को अधिक

प्रगतिशील और आधुनिक सिद्ध करने की होड़ में न केवल अपने समाज में बिखराव की स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं, अपितु अपने अस्तित्व को बचाये रखने पर भी एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा रहे है इस अंधी दौड़ में कश्मीरी पंडित समाज के बहुत बड़ी संख्या में नवयुवक और नवयुवतियों अपनी बिरादरी के बाहर न केवल देश के अन्य वर्गों और धर्मों में परन्तु विदेशों में भी अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं जिससे एक अजीब नयी विकृत संस्कृति जन्म ले रही है जिसको परिभाषित करना प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है। इन अर्न्तजातीय और अन्तर्राष्ट्रीय वैवाहिक सम्बन्धों, उनकी मिश्रित संस्कृति तथा उनके आचार–विचार का कश्मीरी पंडित समाज पर दूरगामी परिणाम क्या होगा इसकी कल्पना करना बहुत कठिन कार्य नहीं है। इसका फल निश्चित रूप से एक चूँ–चूँ का मुरब्बा होगा जिसके बारे में कभी पंडित गोपीनाथ गुर्टू ने अपने लाहौर से प्रकाशित समाचार पत्र 'अखबार–ए–आम' में लिखा था। क्या इस प्रकार के विचित्र वैवाहिक सम्बन्ध कश्मीरी पंडित समाज को एक सूत्र में बाँधे रखने में सफल हो पायेंगे। क्या इस प्रकार के क्षणिक आवेग में किये गये सम्बन्धों से हमारी विशिष्ट पहचान पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ? क्या हम अपने अस्तित्व को इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन देकर अधिक समय तक सुरक्षित रखने में सफल सिद्ध हो सकेंगे ? निश्चित रूप से ऐसी परिस्थितियों में यह कदापि सम्भव नहीं हो सकेगा। समय की पुकार है कि हम इस पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करें और इस पर प्रभावी अंकुश लगाने का प्रयास करें ताकि समय रहते हम अपने समाज को विखण्डित होकर पूर्ण रूप से लुप्त हो जाने के पूर्व बचा सकें।

जब हम ही न होंगे तो क्या रंग–ए–महफिल,

किसे देखकर आप शरमाईएगा।

कश्मीरी पंडित और काश्मीरियत

विगत कुछ वर्षों से विभिन्न मंचों द्वारा जम्मू कश्मीर राज्य के विभाजन की मांग बड़े ही प्रभावशाली ढंग से उठाई जा रही है जिसका बीजारोपण बहुत समय पूर्व सर ओवन डिक्सन द्वारा किया गया था। हमारे समाज के कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी नेतागण भी इस मांग को बहुत ही चतुराई के साथ खूब हवा दे रहे हैं तथा उसके पक्ष में अनेक कुतर्क प्रस्तुत कर रहे हैं। वहीं दूसरी ओर हमारे ही समाज के कुछ पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित लेखक अपने आलेखों में वर्तमान समय की उदारवादी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में काश्मीरियत की कल्पना मात्र को ही एक छलावा या दिवास्वप्न की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं क्योंकि उनकी ऐसी धारणा है कि आधुनिकता और भूमण्डलीकरण के युग में काश्मीरियत की बात करना या फिर उसकी दुहाई देना महामूर्खता है क्योंकि इस यांत्रिक युग में यह व्यक्ति को लगभग 300 वर्ष के पूर्व के इतिहास के पृष्ठों में ले जाने का प्रयास है जब कश्मीरी पंडित घाटी में संसाधनों के अभाव में और विकास की कल्पना से परे एक संकुचित परिधि में अपना जीवन निर्वाह करने को विवश था और कश्मीर घाटी के बाहर के संसार से उसका कुछ लेना देना नहीं था। यहां पर स्वाभाविक रूप से एक बहुत बड़ा प्रश्न यह उठता है कि क्या हम इस तथाकथित आधुनिकता का चोला पहन कर अपनी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति की जड़ों में स्वयं मट्ठा डालकर उसको नष्ट कर दें या फिर कोई मध्यम मार्ग खोजने का प्रयास करें जिससे पुरानी कहावत कि सांप भी मर जाये और डंडा भी न टूटे को हम चरितार्थ कर सकें। हमें इस बात पर गम्भीर चिंतन और मनन करने की नितान्त आवश्यकता है कि हम कौन से मार्ग का चयन करें जिसके द्वारा समाज के अस्तित्व को विखण्डित होकर समाप्त होने से बचाकर उसे सुरक्षित और समृद्ध बनाया जा सके। इस कठिन कार्य के लिये समय रहते हमें उचित कदम उठाने होंगे और विशेष रूप से समाज के भटके हुए युवा वर्ग को एक साकारात्मक दिशा देनी होगी ताकि भविष्य में हमारा समाज पतन की ओर अग्रसर होने के स्थान पर उन्नति की राह पकड़ सके और हम पुनः व्यापक समाज में अपनी विशिष्ट पहचान को स्थापित करने में सफल हो सकें और समाज के अन्य वर्गों के लिये आदर और सम्मान का पात्र बन सकें।

कश्मीरी पंडित विगत 17 वर्षों से अपनी मातृभूमि से निष्कासन की कटु पीड़ा को झेल रहे हैं और सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि वह अपने ही देश में बेगाने होकर अमानवीय परिस्थितियों में एक शरणार्थी के समान अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। अपने घर से उजड़े, अपनी जड़ों से कटे, और अपनी सांस्कृतिक पहचान के लिये व्याकुल इन असहाय कश्मीरी पंडितों को कश्मीर घाटी में सरकार द्वारा पुनः बसाने की अनेक लुभावनी योजनायें समय–समय पर घोषित तो अवश्य की जाती हैं पर उन योजनाओं पर किन्हीं कारणों से आज तक अमल नहीं हो सका और इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा बनाई गयी तमाम महत्त्वाकांक्षी योजनायें उपयुक्त इच्छा शक्ति के अभाव में अन्त में टांय–टांय फिस हो गयीं, क्योंकि उन योजनाओं के देश की आन्तरिक सुरक्षा पर पड़ने वाले दूरगामी परिणामों पर कभी किसी ने ठोस चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी और केवल तत्कालिक वोट बैंक की राजनीति को अधिक महत्त्व दिया जिसका परिणाम आज हमारे सामने है कि अब आतंकवाद कश्मीर से निकलकर सम्पूर्ण देश में अपने पैर पसार चुका है और आतंकवादी बिना किसी हिचक के जब चाहें और जहां चाहें निडर होकर हमला कर देते हैं और हम केवल उसकी तीव्र भर्त्सना करके और एक निन्दा का प्रस्ताव पारित करे उसकी इतिश्री कर लेते हैं क्या हम वास्तव में कभी इस जटिल और जड़ीली समस्या का अपने हितों की रक्षा करते हुए भविष्य में समाधान ढूंढ पाने में सफल हो पायेंगे। या फिर केवल हवा में तीर चलाते रह जायेंगे। क्या इस प्रकार के अधकचरे प्रयास देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिये भविष्य में और अधिक भयानक समस्यायें और भीषण संकट नहीं उत्पन्न कर देंगे।

घाटी से निष्कासित तथा व्यापक समाज द्वारा तिरस्कृत किये गये कश्मीरी पंडितों को घर वापसी का दिवा स्वप्न देखने से पूर्व अपने अतीत के लगभग 600 वर्ष के पलायन के इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टि अवश्य डालनी चाहिये ताकि वो पुनः वह भूल न कर बैठें जिसके लिये बाद में उन्हें पश्चाताप करना पड़े और उनको फिर समाज की दया का पात्र बनने को लाचार होना पड़े। एक समझदार व्यक्ति घड़ी–घड़ी वह गलती नहीं दोहराता है जिसके लिये उसे बाद में पश्चाताप करना पड़े।

जम्मू–कश्मीर राज्य के जब डॉ. फारूक अब्दुल्ला मुख्यमंत्री थे तब उन्होंने केन्द्र सरकार को घाटी में कश्मीरी पंडितों की पुनः वापसी के लिये एक वृहद् कार्ययोजना बनाकर भेजी थी जिस पर किन्हीं कारणों से आज तक अमल नहीं

हो सका। इसमें जमकर कश्मीर में काश्मीरियत को बचाये रखने की वकालत की गयी थी पर इस तथाकथित काश्मीरियत का वास्तविक अर्थ या जमीनी हक़ीक़त क्या है, यह अब भी एक पेंचीदा विषय बना हुआ है जिसका सहारा लेकर घाटी में वह सब किया जा रहा है जो समाज के एक वर्ग विशेष के हित साधने के अलावा कुछ नहीं है।

जब सन् 1947 में धर्म के नाम पर देश का विभाजन हुआ और पाकिस्तान के सैनिकों ने कबाइलियों की वेश–भूषा में 21 अक्टूबर सन् 1947 को कश्मीर पर अपना कब्जा स्थापित करने के लिये आक्रमण किया, तब भी शेख मोहम्मद अब्दुल्लाह ने कश्मीर में काश्मीरियत को बचाये रखने की दुहाई दी थी पर उन पर बाद में सन् 1953 में देशद्रोह का आरोप लगाकर उनको बारामुला से गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया क्योंकि वास्तव में वे काश्मीरियत की आड़ लेकर कुछ और ही खेल खेल रहे थे। वे कश्मीर में अपना एक छत्र राज स्थापित करना चाहते थे और अपने को उस राज्य के सुल्तान के रूप में देखना चाहते थे जो उनकी गिरफ्तारी के बाद सम्भव नहीं हो सका। कश्मीर में पूर्ण स्वायत्तता की मांग और सन् 1953 के पूर्व की स्थिति को बहाल करना उसी दिशा में एक कदम है। अतः केन्द्र सरकार द्वारा कश्मीरी पंडितों को घाटी में चरणबद्ध तरीके से पुनः बसाने की कार्ययोजना की व्यावहारिकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है कि क्या इस प्रकार का अधकचरा प्रयास वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव हो पायेगा जब केन्द्र तथा राज्य सरकार आतंकवाद पर प्रभावशाली अंकुश लगाने में अब तक सफल नहीं हो पायी है और घाटी में निरन्तर आतंकवादी घटनायें हो रही हैं और निर्दोष व्यक्ति नित्य मौत के घाट उतारे जाते हों।

अंग्रेजों ने लन्दन में तीन गोल मेज सम्मेलन आयोजित करने के पश्चात् सन् 1947 में भारत को स्वतंत्र किया था। अब उसी तर्ज पर डॉ. मनमोहन सिंह विभिन्न स्थानों पर गोल–मेज सम्मेलन आयोजित कर रहे हैं। उनका इनके पीछे नेक इरादा क्या है यह किसी को नहीं मालूम। कदाचित वे भी इनके परिणाम से अनभिज्ञ है। यह केवल समस्या का सही निदान ढूंढने के स्थान पर केवल एक समय काटने की कवायद प्रतीत होती है क्योंकि इससे कोई साकारात्मक हल निकट भविष्य में निकल आयेगा, यह प्रायः असम्भव सा लगता है।

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा प्रस्तावित कार्य योजना के अनुसार विस्थापित कश्मीरी पंडितों को घाटी में अलग अलग सुरक्षित स्थानों पर नव निर्मित कालोनियों में बसाने के लिये प्रेरित किया जायेगा। इस प्रकार के प्रबन्ध में अब यह बिलकुल स्पष्ट हो चुका है कि वे अपने पूर्वजों के घरों में नहीं जा पायेंगे अपितु उन्हें इन नयी विकसित की गयी छावनियों में अपना घर फिर से निर्माण करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा जो उनके घावों पर नमक छिड़कने के समान होगा।

यहां पर एक बात यह भी विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है कि आज कल कश्मीर घाटी में जिस प्रकार के हालात चल रहे हैं और जिस प्रकार वहां की आम जनता में जिसमें बहुसंख्यक मुसलमान भी शामिल हैं असुरक्षा और भय की भावना व्याप्त है उससे ऐसा कदाचित नहीं प्रतीत होता है कि जम्मू कश्मीर और दिल्ली के शरणार्थी शिविरों में अभाव, अपमान और असुरक्षा का जीवन व्यतीत कर रहे कश्मीरी पंडित एकाएक इस प्रकार की नयी व्यवस्था में अपना घर बनाकर रहने के लिये लालायित हो उठेंगे और अपना सब कुछ दांव पर लगाने के लिये एक जड़ियल जुआरी की भांति तत्पर हो जायेंगे। यह बात एकदम भिन्न है कि इस प्रस्तावित कार्ययोजना की आड़ में 2600 करोड़ रुपयों

डॉ., अमृतनाथ शर्गा, सुरवाला शर्गा, डॉ., बैकुण्ठ नाथ शर्गा तथा कैलास नरायण बहादुर कश्मीर में 1981

को अपने मन के अनुसार भ्रष्ट अधिकारियों को वारा न्यारा करने का एक सुनहरा अवसर अवश्य प्राप्त हो जायेगा। इस भारी भरकम धनराशि के वास्तविक उपयोग का पता लगाना भविष्य में बहुत ही दुश्कर कार्य अवश्य हो जायेगा कि किन किन मदों में इसका प्रयोग किया गया।

पाकिस्तान के खुफिया तंत्र द्वारा प्रशिक्षित कश्मीर के प्रमुख आतंकवादी संगठन हिजबुल मुजाहिदीन ने इस प्रस्तावित कार्य योजना का कठोर शब्दों में विरोध किया है। उसका आरोप है कि यह कश्मीरियों को धर्म के आधार पर बांटने की एक घिनौनी साज़िश है जो काश्मीरियत की मूल भावना के एकदम विपरीत है। पर उनकी आतंकवादी गतिविधियों को देखते हुए उनके इस विरोध को हल्के में नहीं लिया जा सकता। उनका स्पष्ट मत है कि कश्मीर घाटी को मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम क्षेत्रों में विभाजित करना न केवल एक अदूरदर्शिता पूर्ण अपितु एक मूर्खतापूर्ण कदम है। इस कार्य से साम्प्रदायिक सौहार्द सुधरने के स्थान पर अधिक बिगड़ेगा और समाज में समरसता के स्थान पर विभिन्न वर्गों में द्वेष तथा कटुता की भावना और अधिक उजागर होगी। यह योजना सदियों से चली आ रही मिश्रित संस्कृति की आस्था पर एक कुठाराघात होगी। हिजबुल का इस संबंध में यह भी तर्क है कि अलग से सुरक्षा क्षेत्र और छावनियां बना देने से घाटी में निश्चित रूप से साम्प्रदायिकता

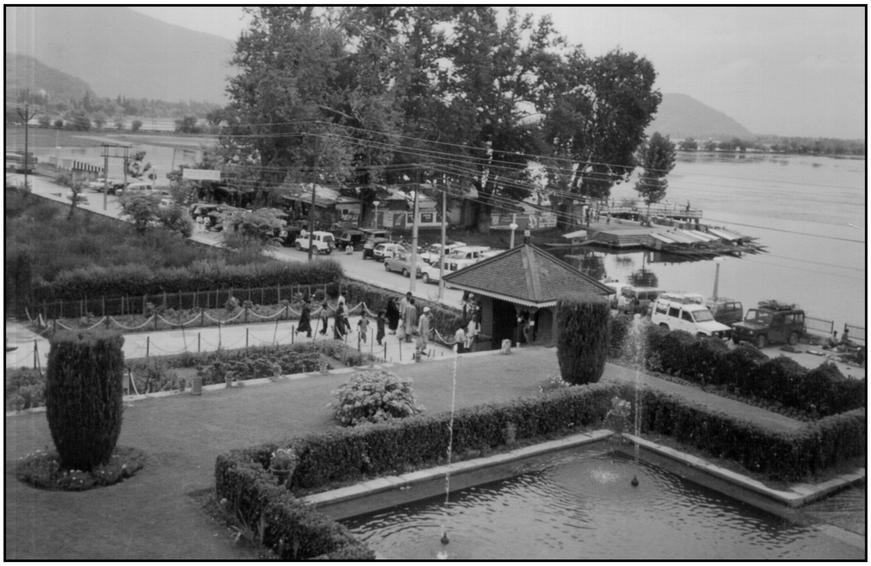

निशातबाग़–कश्मीर

और सदभावना में कमी आयेगी और अलगाव की भावना और अधिक विकसित होगी जिसका पूरा लाभ वह शक्तियां उठायेंगी जो घाटी में अमन चैन की पक्षधर नहीं हैं। उनके इस तर्क में निश्चित रूप से काफी दम है क्योंकि इस भेदभावपूर्ण वातावरण और एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखने में कभी भी सामान्य स्थिति नहीं पनप पायेगी। इस संकटपूर्ण ऊहापोह की स्थिति का पूरा लाभ उठाते हुए साम्प्रदायिक तत्व तुरन्त अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकनी शुरू कर देंगे। सबसे प्रमुख बात यह होगी कि यह प्रस्तावित छावनियां सदैव जिहादियों के निशाने पर होंगी और सुरक्षा बलों के अनेक प्रयासों और नाकेबन्दी के बाद भी यह उनकी अमानवीय हरकतों से कहां तक सुरक्षित हो पायेंगी जब उनके आत्मघाती दस्ते अकूत सुरक्षा के घेरे को बेधकर सुरक्षा बलों पर प्रहार करने में सफल हो जाते हैं जिसका जीता जागता उनका लाल किले, संसद भवन, अक्षरधाम मन्दिर और अयोध्या के रामलला पर बेखौफ आक्रमण एक उदाहरण है।

आज प्राथमिकता इस बात की है कि घाटी में पनप रही अविश्वास की भावना को समूल नष्ट किया जाये। ग़ैर कश्मीरी आतंकवादी संगठनों के साथ कठोर कार्यवाही करके उनको एकदम निष्क्रिय किया जाये। घाटी में बिना किसी हिचक के सारे धर्म, सम्प्रदाय और पंथ के व्यक्तियों को बिना किसी प्रकार के भेदभाव के बसने का एक समान अधिकार प्रदान किया जाये। वहां के बहुसंख्यक समाज को यह समझाने का प्रयास किया जाये कि यदि उन्हें वास्तविक रूप से काश्मीरियत और अपनी सदियों पुरानी सांझा संस्कृति तथा विरासत में विश्वास है तो उन्हें हर प्रकार से कश्मीरी पंडितों की पूर्ण सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना होगा ताकि पाकपरस्त तत्त्वों को अलग–थलग किया जा सके और उनके कश्मीर को पाकिस्तान का एक अंग बनाने के मंसूबों पर पानी फेरा जा सके जो कश्मीर की जटिल समस्या के समाधान की ओर सम्भवतः एक सही कदम होगा।

आतंकवादियों के हाथों से घातक अस्त्र–शस्त्र न छीनना और केवल धर्म के नाम पर कश्मीर के विभाजन का विरोध करना एक प्रकार से स्वयं में एक विरोधाभास है जो एक समय में दो विपरीत दिशाओं में दौड़ रहे घोड़ों की सवारी करने के समान है जिसमें घुड़सवार ज़मीन पर औंधेमुंह गिरकर मिट्टी चाटता नजर आता है। यही उचित समय है जब हम संवेदनाओं से ऊपर

उठकर परिस्थितियों का सही आंकलन करें और वहां की ज़मीनी हक़ीक़त के अनुसार लचर रवैय्ये अपने के स्थान पर कुछ ठोस निर्णय लें क्योंकि कभी–कभी बहुत अधिक देर घातक सिद्ध हो जाती है और फिर अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करना निरर्थक हो जाता है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है–

लायी हयात आये, कज़ा ले चली चले।
न अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।।

कश्मीरी पंडित और ऋषिपीर का जाग

जब कभी भी किसी देश में क्रान्ति द्वारा सत्ता का परिवर्तन होता है तो स्वाभाविक रूप से वहां का समाज भी उसके प्रभाव से बच नहीं पाता है और नये मूल्यों तथा आदर्शों का सूत्रपात होता है। इस परिवर्तन की लपेट में आकर जहां समाज के कुछ वर्ग अपनी जड़ों से एकदम कट जाते हैं वहीं कुछ वर्ग अपनी सदियों पुरानी विरासत और संस्कृति के प्रति निष्ठा रखते हुए अपने को नये युग की आशाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप ढालने का प्रयास करते हैं ताकि अतीत और वर्तमान में एक निरन्तरता का तारतम्य बना रहे और भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को यह समझने में बहुत कठिनाई न हो कि उनके पूर्वज वास्तव में थे कौन और कहां से आकर अपने ही देश में बेगाने हो गये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज का कोई भी वर्ग बिना किसी मर्यादित आचरण के बहुत अधिक समय तक अपने अस्तित्व को बचाये नहीं रख सका और अन्तोगत्वा अपनी विशेष पहचान को समाप्त कर बैठा।

अवध में जब 1856 में अंग्रेजों ने वहां के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अली शाह को राज सिंहासन से उतार कर सत्ता पर अपना कब्जा किया तो उनके दरबार में विभिन्न पदों पर आसीन कश्मीरी पंडितों के सामने न केवल अपनी रोज़ी–रोटी के प्रति संशय उत्पन्न हो गया अपितु अपने छोटे से समाज के अस्तित्व को बचाये रखने का एक बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो गया। काफ़ी विचार मंथन करने के उपरान्त बिरादरी के वरिष्ठ सदस्यों ने अपनी एकजुटता और विशिष्ट पहचान को बनाये रखने के लिए धर्म का सहारा लेना अधिक उचित समझा और प्रति वर्ष सावन के पवित्र माह में कश्मीर के 17वीं शताब्दी के महान् संत ऋषि पीर के नाम पर एक बृहद धार्मिक अनुष्ठान करने की योजना बनाई ताकि बिरादरी के सदस्यों को एकसूत्र में बांधे रखा जा सके और उनको पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्प्रभावों से बचाया जा सके।

यहां पर सुधी पाठकों को यह बताना अनुचित न होगा कि कश्मीर घाटी में संतों, ऋषियों, मुनियों, महात्माओं तथा दरवेशों की एक लम्बी परम्परा रही है जिन्होंने अपने जीवन काल में अपने अद्‌भुत चमत्कारों द्वारा न केवल ख्याति

अर्जित की अपितु अपने भक्तों और अनुयायियों की एक लम्बी कतार खड़ी की जो उनको अपना आध्यात्मिक गुरु समझने लगे और उनमें से कुछ अपने जीवन काल में ही भगवान कहलाने लगे। जो कश्मीरी पंडित अपना किन्हीं कारणों से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गये, वे इन ऋषियों को पीर कहने लगे और इस प्रकार कश्मीर में ऋषि पीर परम्परा का चलन प्रारम्भ हुआ जो वहां के दोनों समुदायों के लिये पूज्यनीय और वन्दनीय थे। इसे अब काश्मीरियत की संज्ञा दी जाती है जिसमें हिन्दू और मुस्लिम एक समान किसी दिव्य पुरुष की आराधना करते हों। कश्मीर की सांझा संस्कृति का यह एक अद्भुत उदाहरण है।

ऋषि पीर के पूर्वज मूल रूप से कश्मीर के सोपोर नगर के निवासी थे और इस नाते सोपोरी पंडित कहलाते थे। उनके एक पूर्वज मुग़ल सम्राट शाहजहाँ (1626–1658) के शासनकाल में कश्मीर में सिक्के ढालने की टकसाल में अधिकारी थे। वे बहुत सच्चे और ईमानदार अधिकारी थे। एक बार उनके किसी शत्रु ने कश्मीर के सूबेदार के कान भरे कि वह कम भार के सोने के सिक्के ढलवाते हैं और घाटी में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं जिस पर सूबेदार ने उनको अपने दरबार में तलब किया। परन्तु जब सिक्कों को उसके सामने तौला गया तो उनका भार एकदम टना–टन ठीक निकला और ऋषि पीर के पूर्वज को सूबेदार को सम्मानित करना पड़ा।

जब अली मर्दान खां कश्मीर का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने ऋषि पीर के पिता पंडित गोविन्द जू सोपोरी को राजस्व विभाग का अधिकारी बनाया। वे बहुत ही निष्ठावान एवं कर्तव्यपरायण अधिकारी थे पर अपना सारा कर्य बायें हाथ से बड़ी कुशलता से करते थे जिसको कश्मीरी भाषा में खुशु कहते हैं। इस नाते वह पंडित गोविन्द जू खुशु के नाम से अधिक प्रसिद्ध हो गये। उनका परिवार सोपोर से आकर श्रीनगर के अलीकदल मुहल्ले में रहने लगा। सन् 1637 में जब उनकी पत्नी एक शिकारे पर बैठकर झेलम नदी के मार्ग से श्रीनगर से सोपोर जा रही थी तो शिकारे में ही ऋषि पीर का जन्म हुआ। एक पुरानी कहावत है कि होनहार बिरवान के चीकन चीकन पात, उसी के अनुरूप ऋषि पीर की बाल्यवस्था से ही एक महान संत बनने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे और युवा होने तक उनकी ख्याति सारी कश्मीर घाटी में फैलने लगी। उनकी दिव्य और अध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होकर बहुत बड़ी संख्या में लोग उनके भक्त बनने लगे। कहते हैं कि एक बार श्रीनगर के अलीकदल

मुहल्ले में भीषण आग लग गयी जिसकी चपेट में कई मकान आ गये। जब लाख जतन करने के पश्चात भी किसी प्रकार आग पर काबू नहीं पाया जा सका तो लोग घबरा कर ऋषि पीर के पास पहुंचे और उनसे इस आग की विनाश लीला से बचाने की विनती करने लगे। ऋषि पीर ने तब अपने पैर की खड़ाऊँ निकाल कर आग पर जोर से फेंकी और देखते ही देखते वह आग का दावानल एकदम शान्त हो गया और सब भौंचक्के रह गये।

जब इस प्रकार की आश्चर्यचकित कर देने वाली घटनाओं की सूचना मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब (1658–1707) के दरबार में पहुंची तो उसने ऋषि पीर को गिरफ्तार करके दरबार में पेश करने का फ़रमान जारी कर दिया। पर जब उसने ऋषि पीर को अपने सामने खड़ा देखा तो वह एकदम भयभीत हो गया और उसने अपने फरमान को रद्द कर दिया और उनको पीर पंडित पादशाह हरदुल जहां मुश्किल आसां की उपाधि से अलंकृत किया।

लखनऊ के प्रसिद्ध उर्दू के शायर और उपन्यासकार पंडित रतन नाथ दर 'सरशार' ने इस घटना को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है।

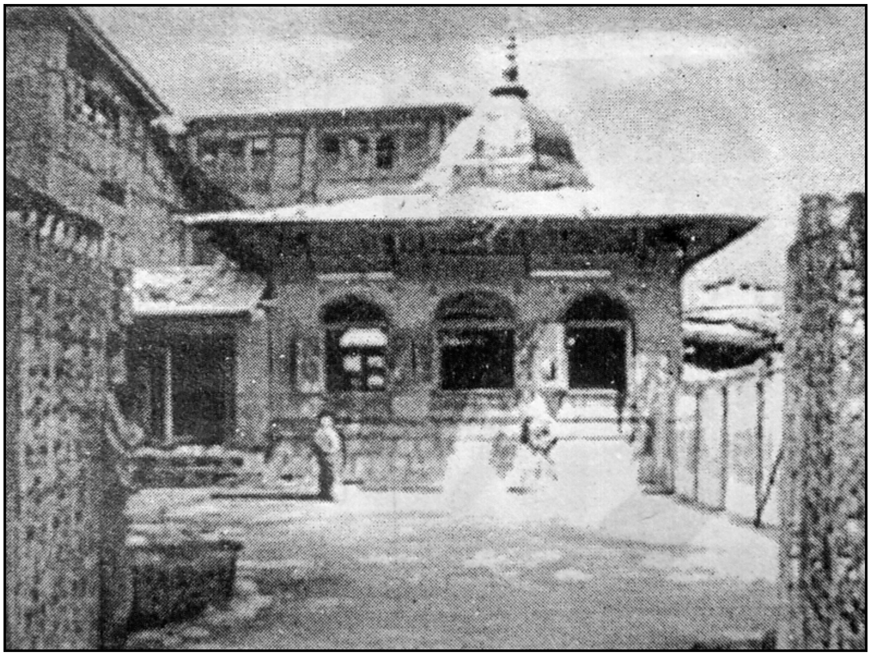

श्रीनगर के अली कदल मुहल्ले में ऋषिपीर का पावन स्थल

"मद्दा ए जनाब–ए–ऋषिपीर आया है
दरबार में शाहों के फ़कीर आया है
खुरशीद की आंखें क्यों न झपकें सरशार
एक ज़र्रा–ए–ख़ाक–ए–कश्मीर आया है।

इससे इस बात का भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि 19वीं सदी में लखनऊ के कश्मीरी पंडितों पर ऋषिपीर के व्यक्तित्व का कितना अधिक प्रभाव था। ऋषिपीर लगभग 60 वर्ष की आयु में सन् 1697 में अपने नश्वर शरीर को त्याग कर ब्रह्मलीन हो गये।

लखनऊ के कश्मीरी पंडितों ने उन्हीं की पावन स्मृति में अपनी एकता को बनाये रखने और अपनी सदियों पुरानी संस्कृति को संरक्षित रखने के उद्देश्य से ऋषिपीर का जाग नाम से एक धार्मिक अनुष्ठान प्रारम्भ किया जो पंडित भोलानाथ बक्शी की बग़िया (अंगूरी बाग़) में एक वृहद पैमाने पर आयोजित होता था जिसका मुख्य कर्ताधर्ता पंडित बिशन नरायण बक्शी को बनाया गया वे नवाब वाजिदअली शाह के दरबार में बक्शी के पद पर आसीन थे और अपने समय के एक बहुत बड़े जमीदार थे। इस धार्मिक अनुष्ठान में यज्ञ के साथ साथ शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम भी बिरादरी के मनोरंजन के लिये आयोजित किये जाते थे और उसके पश्चात बिरादरी के सदस्य एक साथ बैठकर सामूहिक रूप से कश्मीरी भण्डारियों द्वारा पकाये गये लज़ीज़ कश्मीरी पकवानों और व्यंजनों का ज़ायका लेते थे। उस काल खण्ड में यह वार्षिक उत्सव इतना अधिक रोचक और आकर्षक बन गया था कि बिरादरी के तमाम सदस्य बड़ी उत्सुकता के साथ वर्ष भर इसकी प्रतीक्षा करते थे और इसके आयोजन के लिये दिल खोल कर चन्दा देते थे। इस वार्षिक आयोजन में बुजुर्ग बिरादरी के बारे में आत्म मंथन करते थे और युवा वर्ग को अपने जीवन में उच्च आदर्शों तथा मूल्यों को आत्मसात करने की प्रेरणा देते थे। नवयुवकों को तथा नवयुवतियों को अपनी बिरादरी में विवाह करने की शपथ दिलायी जाती थी। नवयुवकों को नशीली वस्तुओं के सेवन, जुआ खेलने तथा तवायफों के कोठों पर मुजरा सुनने के लिये जाने जैसी खराब आदतों से अपने को मुक्त रखने की सलाह दी जाती थी तथा उसकी समीक्षा की जाती थी। बिरादरी में व्याप्त अन्य कुरीतियों पर भी चर्चा होती थी। पर हर सिक्के के दो पहलू होते हैं।

कालान्तर में धीरे–धीरे इस वार्षिक अनुष्ठान का स्वरूप बदलने लगा। सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर तवायफों के मुजरे और नाच होने लगे जिसके विरोध में कुछ प्रगतिशील नवयुवक अपने स्वर इस मंच का प्रयोग कर प्रस्फुटित करने लगे।

कश्मीरी मुहल्ले से अंगूरी बाग़ जाने का मार्ग

अंग्रेजों द्वारा अवध में सत्ता संभालने के पश्चात कुछ कश्मीरी पंडित नवयुवकों ने परम्परागत मकतबों में जाकर मौलवियों के संरक्षण में उर्दू तथा फारसी भाषा की शिक्षा ग्रहण करने के स्थान पर लामार्टीनियर तथा कैंनिंग कालेज जाकर अंग्रेजी की शिक्षा ग्रहण करना अधिक तर्कसंगत और उचित समझा ताकि उनको सरकारी नौकरियां प्राप्त करने में अधिक कठिनाई न उत्पन्न हो। इन नवयुवकों ने स्वाभाविक रूप से पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को निकट से जानने और उनके गुणों और अवगुणों को भलीभांति समझने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने जीवन में विज्ञान के महत्त्व को समझा और उनकी विचारधारा तथा सोच में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में इस युवा वर्ग के दिमाग की बन्द खिड़कियाँ एकाएक खुलने लगीं और वह इस प्रकार के धार्मिक आयोजनों को पुराणपंथी, पोंगापंथी और रूढ़िवादी बताने लगे।

पंडित ब्रज नरायण चकबस्त ने इन युवाओं को लामबन्द करके उनके नेतृत्व की कमान अपने हाथ में संभाली और इस धार्मिक अनुष्ठान को हाई जैक करने के उद्देश्य से वहां जाकर उसके मंच से भाषणबाजी करने लगे और वहां एकत्रित बिरादरी के सदस्यों को इस आयोजन को पाखण्ड, आडम्बर तथा रूढ़िवादी प्रथाओं का प्रतीक बताने लगे और वहां अपनी विचारधारा का प्रचार करने लगे। प्रारम्भ में कुछ बुजुर्गों ने उनके इस कृत्य पर अपनी आपत्ति प्रकट की पर कुछ समय पश्चात उनको लगा कि उनके समर्थन में बिरादरी के सदस्यों में कुछ अधिक उत्साह नहीं है और वह खुल कर युवा पीढ़ी की इस

मानसिकता के विरोध में कदाचित मोर्चा खोलने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। इसका दुःखद परिणाम यह हुआ कि इस धार्मिक अनुष्ठान के आयोजकों ने सन् 1906 में खिन्न होकर इसको सदा के लिए बन्द कर दिया। इस घटना के बाद ही सन् 1907 में पंडित ब्रज नरायण चकबस्त की प्रथम पत्नी श्रीमती ज्वाला चकबस्त सुपुत्री पंडित पृथ्वी नाथ नागू तथा उनके नवजात पुत्र की मृत्यु हो गयी। इस दुर्घटना का जो भी अर्थ निकाला जाये पर तब से लेकर आज तक पिछले लगभग 100 वर्षों में इस प्रकार का सामूहिक आयोजन इतने बड़े पैमाने पर लखनऊ की कश्मीरी पंडित बिरादरी में सम्भव नहीं हो सका।

यह इस बात का भी स्पष्ट संकेत है कि स्थापित परम्पराओं और मान्यताओं को तोड़ना या उनका मखौल बनाना बहुत सरल है पर किसी समाज को एक सही दिशा देकर उसको प्रगति के पथ पर बिना अपनी विशिष्ट पहचान को नष्ट किये हुए अग्रसर करना कितना कठिन कार्य है। उसके लिये तपस्या के समान निःस्वार्थ भाव से सेवा करनी पड़ती है जो हर एक के बस की बात नहीं। ऐसे युग पुरुष इस धरती पर यदा कदा ही जन्म लेते हैं जो अपनी आभा और प्रताप से समाज में डगमगाते धार्मिक मूल्यों को पुनः स्थापित कर उसे एक बिलकुल नया स्वरूप प्रदान करते हैं। यह प्राकृतिक नियम है। प्रलय के बाद ही सृष्टि की रचना होती है। यही शाश्वत सत्य है। अरविन्द असर के शब्दों में–

यह आग हवा संत की वाणी की तरह है,
काटोगे उसे कैसे जो पानी की तरह है।

कश्मीरी पंडित और आंकड़ों का खेल

प्रायः यह कहा जाता है कि सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन (1389–1413) के शासन काल में कश्मीर घाटी में केवल 11 कश्मीरी पंडित परिवार बचे थे जिन्होंने किसी प्रकार घने जंगलों या गुफ़ाओं में छुपकर अपने धर्म और प्राणों की रक्षा की थी। बाक़ी कश्मीरी पंडित या तो मौत के घाट उतार दिये गये या अपनी सुरक्षा के लिये कश्मीर घाटी को छोड़कर देश के अन्य क्षेत्रों में पलायन कर गये। इसी काल खण्ड में सबसे अधिक संख्या में कश्मीरी पंडितों को तलवार की नोक पर धर्मान्तरण कर मुस्लिम बनाया गया। यहाँ पर विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि सन् 1319 तक कश्मीर एक हिन्दू राज्य था और वहाँ का शासक सुहदेव हिन्दू धर्म का अनुयायी था। उस समय कश्मीर घाटी की जनसंख्या क्या थी इसके प्रमाणिक आंकड़े इस समय उपलब्ध नहीं हैं। कश्मीरी पंडितों का जो पलायन 1389 से 1413 के मध्य हुआ था उनकी संख्या क्या थी और वह देश के किन–किन क्षेत्रों में जाकर बसे इस विषय पर आज तक किसी ने कोई शोध कार्य नहीं किया है। कुछ बुद्धिजीवियों का मत है कि देश में जहाँ–जहाँ सारस्वत ब्राह्मण निवास करते हैं, वे 14वीं सदी में कश्मीर घाटी से निकले हुए कश्मीरी पंडितों के वंशज हैं, पर अभी इस विषय पर कोई ठोस शोध कार्य नहीं हुआ है।

मुग़ल सम्राट अकबर (1556–1605) ने सन् 1586 में कश्मीर के अन्तिम कश्मीरी सुल्तान यूसुफ़ शाह चक को बन्दी बनाकर कश्मीर घाटी को अपने अधीन किया था। उस समय अकबर के नौ रत्नों में से एक अबुल फ़ज़ल ने कश्मीर घाटी में कश्मीरी हिन्दुओं की संख्या 2 लाख के आसपास आंकी थी। उसने किस आधार पर यह आंकड़े जुटाये यह कहना कठिन है क्योंकि हमारे देश में इतिहास लेखन को कभी प्राथमिकता नहीं दी गयी जिसके कारण आंकड़ों के खेल में अभी हम विश्व के अन्य देशों की तुलना में बहुत पीछे हैं।

अवध में नवाबी शासन काल (1720–1856) के दौर में बहुत बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडित सीधे कश्मीर से और देश के अन्य नगरों से लखनऊ में आकर बसे और उनके नाम पर सन् 1775 और सन् 1780 के मध्य एक पूरा

मुहल्ला कश्मीरी मुहल्ले के नाम से आबाद हुआ जिसमें एक मोटे अनुमान के अनुसार कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या लगभग 1000 थी पर उनके वास्तविक आंकड़े क्या थे यह कह पाना बहुत कठिन है क्योंकि कश्मीरी पंडितों की एक जाति के रूप में कभी जनगणना नहीं हुई और उनको सदैव हिन्दुओं के रूप में गिना गया।

लखनऊ में पहली जनगणना नवाब वाजिद अली शाह ने सन् 1854 में करायी थी जिसमें नगर में कितने मुहल्ले हैं उनमें कितने मकान कच्चे और कितने पक्के हैं और उनमें कितनी आबादी है यह आंकड़े जुटाये गये थे। इस जनगणना के आधार पर उस समय लखनऊ नगर की जनसंख्या लगभग 7 लाख आंकी गयी थी और उस समय लखनऊ देश के कुछ चुनिन्दा प्रमुख नगरों में से एक था पर इनमें कश्मीरी पंडितों की संख्या क्या थी इसका कोई लेखा–जोखा नहीं है। 1857 की क्रान्ति के पश्चात लखनऊ नगर की जनसंख्या घटकर लगभग 1.5 लाख रह गयी थी जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लगभग 5 लाख लोग या तो इस ग़दर में मार दिये गये या फिर लखनऊ छोड़कर अन्य स्थानों को भाग खड़े हुए।

अंग्रेज़ों ने अवध में सन् 1858 में अपना शासन पूर्ण रूप से स्थापित करने के पश्चात सन् 1865 में प्रथम बार सुनियोजित तरीके से जनगणना कराई जिसके अनुसार अवध और उत्तर पश्चिमी प्रान्त जो अब उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल है में कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या लगभग 719 थी। उस समय लखनऊ, आगरा, लाहौर और दिल्ली उत्तर भारत के कश्मीरी पंडितों के घाटी के बाहर प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे। सन् 1881 में प्रथम बार विधिवत सम्पूर्ण भारत की जनगणना कराई गई जिसमें सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या लगभग 40 करोड़ आंकी गयी और उसमें मुस्लिमों की जनसंख्या लगभग 19 प्रतिशत पायी गयी। उस समय रिसायतों में कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या केवल 135 थी। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या 2,356 आंकी गयी जबकि पंडित जवाहर लाल नेहरू के आंकलन के अनुसार सन् 1940 में उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में कश्मीरी पंडितों की कुल जनसंख्या लगभग 5000 थी।

आंकड़ों के इस खेल में विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि जब देश स्वतंत्र नहीं हुआ था तब मुस्लिमों की आबादी देश की कुल आबादी

का 19 प्रतिशत थी पर तब वह अल्पसंख्यक नहीं कहलाते थे पर अब जब उनकी आबादी कुल देश की आबादी का 28.6 प्रतिशत है और कुछ नगरों में उनकी आबादी 50 प्रतिशत से अधिक है वह अल्पसंख्यक कहलाते है और जिसके नाते उनको कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। इसके पीछे तर्क क्या है। इससे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि देश का धर्म के नाम पर सन् 1947 में विभाजन हो जाने के पश्चात भी भारत में मुस्लिमों की आबादी के अनुपात में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आया केवल देश के वह क्षेत्र जो सन् 1947 के पश्चात पाकिस्तान का हिस्सा बन गये उन क्षेत्रों में रह रहे हिन्दुओं की आबादी नगण्य अवश्य हो गयी।

सबसे विचित्र बात यह है कि सम्पूर्ण विश्व में इण्डोनेशिया के बाद सबसे अधिक मुस्लिमों की आबादी भारत में है पर उसके बाद भी उनको अल्पसंख्यक माना जाता है। इसके लिये क्या आधार और तर्क है यह स्पष्ट नहीं है। इसी आधार पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति शम्भू नाथ श्रीवास्तव ने एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है कि आख़िर अल्पसंख्यक होने का आधार और परिभाषा क्या है ? वास्तव में हर राजनेता मुस्लिमों को एक वोट बैंक के रूप में देखता है और उनको अपने पक्ष में करने के लिए सदैव उनका हर प्रकार से मालीदन करने को तत्पर रहता है। उसको इस बात में तनिक भी रूचि नहीं कि मुस्लिम देश की मुख्य धारा से जुड़कर प्रगति करे क्योंकि तब उनका केवल वोट बैंक के रूप में प्रयोग करना सम्भव नहीं हो पायेगा। यही नहीं इस्लाम धर्म में जाति व्यवस्था का कोई स्थान नहीं है और इसे हिन्दू धर्म की कुरीति बताया जाता है पर हमारे राजनेता इस्लाम धर्म में भी पिछड़ी और दलित जातियों को चिन्हित कर उनको आरक्षण प्रदान करने की बात कर रहे हैं जो न केवल हमारे देश के संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल है अपितु इस्लाम धर्म के मौलिक सिद्धान्तों के विरूद्ध है। मुस्लिमों ने भारत में लगभग 1000 वर्ष शासन किया अब यदि उसके बाद भी वह पिछड़े हैं और प्रगति करने में विश्वास नहीं रखते हैं तो उनकी इस स्थिति के लिये वह स्वयं दोषी हैं। उनकी इस मानसिकता के लिये किसी और को दोष देना या फिर दोषी ठहराना कहाँ तक उचित है। एक पुरानी कहावत है कि आप घोड़े को पानी तक तो ला सकते हैं पर आप उसको पानी पिला नहीं सकते। घोड़ा पानी अपनी इच्छा से पीता है।

हमारे राजनेताओं ने अपना हित साधने के लिये कुछ इसी प्रकार का आंकड़ों का खेल विभिन्न जातियों के साथ किया और समाज को अगड़ी और पिछड़ी जातियों में विभाजित कर दिया बिना भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किये हुए यह व्यापक प्रचार किया गया कि पिछले लगभग 5000 वर्षों से पिछड़ी जातियों का शोषण होता रहा जो तथ्यों से एकदम परे है। वास्तविकता यह है कि पिछड़ी जातियों के अनेक दिग्गज राजा और महाराजा हुए हैं जिन्होंने भारत में जमकर राज किया और ख्याति अर्जित की। इनमें कुछ प्रमुख नाम चन्द्रगुप्त मौर्य, छत्रपति शिवाजी महाराज, राजा बिजली पासी, महाराजा सूरजमल, महाराजा महादजी सिंधिया के हैं यहाँ यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि देश के स्वतंत्र होने से पूर्व जितना जाति बोध था उससे कई गुना अधिक देश के स्वतंत्र होने के पश्चात हो गया है जो हमारे राजनेताओं की देन है जो जातियों के समीकरणों के आधार पर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकते हैं और राजसत्ता का जमकर सुख भोगते हैं।

अब यदि हम जम्मू–कश्मीर राज्य के जनगणना के आंकड़ों को समझने का प्रयास करें तो हम पायेंगे कि उनका अपना अलग खेल है। देश में यह एकमात्र राज्य है जिसका अपना अलग संविधान और झंडा है जो वहाँ पनप रहे अलगाववाद और आतंकवाद की जड़ है। इस राज्य की एक अन्य विशेषता यह है कि यह राज्य तीन सम्भागों जम्मू, कश्मीर घाटी और लद्दाख में बँटा हुआ है जिसमें कश्मीर पूर्णतया मुस्लिम बहुल क्षेत्र है जबकि जम्मू और लद्दाख सम्भाग में जनसंख्या का अनुपात लगभग बराबर है। इस राज्य की कुल जनसंख्या एक करोड़ 14 लाख 3 हजार सात सौ है। जिसमें 3,05,349 हिन्दू और 67,53,014 मुस्लिम है। इसके अतिरिक्त 2,07,154 सिख 1,13,707 बौद्ध और 2,518 जैन पंथ के अनुयायी हैं।

यहाँ सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह रही कि जब जनगणना के धर्म के आधार पर एकत्रित किये गये इन आंकड़ों के खेल को रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया के कार्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया तो धर्म के नाम पर प्रदर्शित यह आंकड़े सारे देश में एक गरम बहस का मुद्दा बन गये। सरकार भी सकते में आ गयी और फटाफट एक दूसरी संशोधित रिपोर्ट पेश की गयी। इसमें विशेष रूप से मुस्लिमों की जनसंख्या में तीन प्रतिशत की कमी दिखाई गयी। ऐसा किस विवशता के कारण किया गया यह अभी स्पष्ट नहीं है। क्या

जनसंख्या के आंकड़ों को एक विशेष वर्ग को अपने पक्ष में करने या फिर उसको अनुचित राजनीतिक लाभ पहुँचाने के लिये घटाया या बढ़ाया जा सकता है जैसा कि जनसंख्या की 2001 में जारी की गई रिपोर्ट के साथ किया गया। इस रिपोर्ट में मुख्य रूप से कश्मीरी पंडितों से सम्बन्धित आंकड़े वास्तविक तथ्यों से एकदम परे हैं। यह ही एक मुख्य कारण है कि जम्मू कश्मीर विचार मंच ने इस त्रुटिपूर्ण रिपोर्ट को एक सिरे से ख़ारिज करने की पुरज़ोर माँग की है।

अब यदि 2001 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार कश्मीर में कश्मीरी पंडितों की संख्या 1,00,962 को सही मान लिया जाये तो आतंकवाद के कारण सन् 1989–1990 में लगभग 3.50,000 कश्मीरी पंडित जो कश्मीर से देश के विभिन्न अंचलों में पलायन कर गया है, उसका आंकड़ा कहाँ है। फिर इससे पूर्व सन् 1991 में कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या 1,65,000 बतायी गयी है जबकि एक दशक बाद जनसंख्या में वृद्धि के स्थान पर 64,038 की कमी दर्शायी गयी है। यह आंकड़ों का खेल क्या इंगित करता है। क्या यह मान लिया जाये कि वर्तमान में 1,00,962 कश्मीरी पंडित कश्मीर घाटी में रह रहे हैं या फिर केवल यह आंकड़ों का मायाजाल है जिसे राजनीतिक लाभ के लिये तैयार किया गया है।

देश की कुल आबादी की 18.6 प्रतिशत आबादी मुस्लिमों की आंकी जाती है और कुछ प्रदेशों के जिलों में उनकी जनसंख्या 50 प्रतिशत से अधिक है फिर भी उनको अल्पसंख्यक कहा जाता है वही दूसरी ओर कश्मीर में कश्मीरी पंडितों की आबादी लगभग कुल आबादी का केवल 2 प्रतिशत है फिर भी वे अल्पसंख्यक नहीं हैं जबकि जैन समुदाय की जनसंख्या कश्मीरी पंडितों की तुलना में कहीं अधिक है फिर भी उनको सरकार ने अल्पसंख्यक घोषित कर रखा है। तब यह स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि आख़िर यह परस्पर विरोधाभास क्यों है। क्या राजनेताओं की इच्छा के अनुसार किसी समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित किया जाता है या उसका कोई तर्क संगत आधार है।

प्रतिष्ठित इतिहासविद प्रो. एम.एल. कौल ने अपनी पुस्तक कश्मीर पास्ट एण्ड प्रेसेन्ट में इन जनसंख्या के आंकड़ों के खेल का बहुत ही रोचक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार सन् 2001 में कश्मीर में कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या लगभग 4,00,000 होनी चाहिये थी। अब यदि इस आंकड़े में

3,50,000 कश्मीरी पंडित जो विस्थापित हो चुके हैं को जोड़ दिया जाये तो निश्चित रूप से कश्मीरी पंडितों की जनसंख्या 7,00,000 के आंकड़े को पार कर जाती है। वास्तविकता यह है कि सरकार के पास सन् 1931 में जाति के आधार पर देश में की गयी जनगणना के बाद के कोई ठोस आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यही एक मुख्य कारण है कि जम्मू कश्मीर राज्य में अल्पसंख्यक समुदाय निरन्तर पिसता जा रहा है और उसे राजनीति में हाशिये के बाहर ढकेल दिया गया है। उसकी हर क्षेत्र में प्रासंगिकता लगभग समाप्त हो चुकी है। यदि सम्पूर्ण देश पर अल्पसंख्यक आयोग का क्षेत्राधिकार है तो फिर जम्मू कश्मीर पर उसका अधिकार क्यों नहीं। इस दोहरी नीति का आख़िर तात्पर्य क्या है ?

अब आवश्यकता इस बात की है कि देश भर में रह रहे कश्मीरी पंडितों की नये सिरे से जनगणना करके वास्तविक आंकड़े जुटाये जायें ताकि इस समुदाय के सम्बन्ध में कोई ठोस कारगर नीति बनाई जा सके। केवल हवा में तीर चलाने और फर्ज़ी आंकड़े जुटाने से कश्मीर की जटिल समस्या का समाधान निकाल पाना प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है।

वास्तविकता यह है कि आज तक देश में कश्मीरी पंडितों की एक अलग जाति के रूप में जनगणना की ही नहीं गयी ताकि इस जाति के संरक्षण और अधिकारों के सम्बन्ध में कोई उचित नीति बन पाती जिसका उनको लाभ मिल सकता। इसके लिये दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। आजकल हर जाति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सचेत है। वह सरकार से उनको मानवाने के लिये लामबन्द हो रही है तो फिर कश्मीरी पंडित क्यों नहीं ? उनको क्यों देश की राजनीति में हाशिये के बाहर किया जा रहा है क्या यह किसी सोची समझी राजनीति का हिस्सा है। उनके योगदान को कमतर कर क्यों आंका जा रहा है। क्या वे इस देश के नागरिक नहीं है या उनकी देशभक्ति में कोई कमी है।

अब उचित समय आ गया है जब देश हित में हमें तुष्टीकरण की राजनीति से ऊपर उठकर कुछ ठोस निर्णय लेने होंगे। अन्यथा हम एक ऐसी अंधी काली सुरंग में घुस जायेंगे जहाँ से फिर निकल पाना प्रायः हमारे लिये असम्भव हो जायेगा। आख़िर कब तक कश्मीरी पंडित इन जनगणना के अंकड़ों के मायाजाल में भटकता रहेगा। किसी महान संत ने ठीक ही कहा है कि मित्रता में मनुष्य को सफलता मिलती है किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी हर इच्छा को पूर्ण कर देती है।

कश्मीरी पंडित और अन्तर्जातीय विवाह

भारतवर्ष की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। यहां विभिन्न धर्म, पंथ, सम्प्रदाय तथा ईश्वर में विश्वास न करने वाले मतावलम्बी रहते हैं जिनके अपने अलग–अलग पर्व, उत्सव, रीति–रिवाज, मान्यतायें और परम्परायें हैं। देश के हर क्षेत्र की अपनी अलग संस्कृति और इतिहास है जिसको हम अनेकता में एकता की संज्ञा देते हैं। इसकी तुलना हम एक ऐसे उपवन से कर सकते हैं जिसमें नाना प्रकार के फूल हों जिनमें हर का अपना अलग रूप–रंग और सुगन्ध है जिससे उस उपवन की सुन्दरता अद्‌भुत और निराली हो जाती है। ये ही भारत की संस्कृति की विशेषता है जो उसे विश्व के अन्य देशों से भिन्न बनाती है जहां हर नागरिक को अपने धर्म के अनुसार आचरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता है और उस पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं है। हर धर्म, पंथ और सम्प्रदाय की अपनी मान्यतायें और परम्परायें हैं जिनका पालन करना उनके अनुयायियों का परम कर्त्तव्य है। जिससे उनकी विशिष्ट पहचान बनती है अन्यथा अनेकता में एकता कहने का कोई अर्थ नहीं है।

सनातन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है जिसका न कोई आदि है और न कोई अन्त है। वास्तव में यह ऋषियों और मुनियों द्वारा वैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादित किये हुए सिद्धान्तों के अनुरूप एक जीवन पद्धति है जिससे मनुष्य अध्यात्म की उन ऊँचाईयों तक पहुंच सकता है जहां आत्मा और परमात्मा का भेद समाप्त हो जाता है ये ही भारतीय दर्शन का मूल मंत्र है।

धर्म क्या है। धर्म मनुष्य के आचरण को अनुशासित तथा मर्यादित रखने का एक तंत्र है जिसको मंत्र ऊर्जा प्रदान कर संचालित करते हैं। यही मनुष्य को अन्य प्राणियों की श्रेणी से भिन्न बनाता है और मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने की शक्ति प्रदान करता है जो उसको कुकर्मों की ओर आकर्षित होने से रोकता है।

यहां पर विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि हमारे धर्म ग्रन्थों की रचना कोई एक दो दिन में नहीं कर दी गयी। वे वास्तव में हमारे ऋषियों

और मुनियों द्वारा वैज्ञानिक आधार पर वर्षों किये गये शोध कार्य का सार है जिनमें हमारी जीवन पद्धति को परिभाषित किया गया है। यह ऋषि मुनि मौलिक भारतीय दार्शनिक और वैज्ञानिक थे जिन्होंने मौलिक शोध कार्य में, अपना सारा जीवन समर्पित कर हमको अमूल्य ज्ञान की धरोहर प्रदान की जो आधुनिक अनुसंधान के क्षेत्र में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

मनु ने सर्वप्रथम विभिन्न जातियों के गुणों और अवगुणों पर व्यापक अनुसन्धान करके मनुस्मृति की रचना की जिसके आधार पर उसने समाज का वर्गीकरण किया और उसी के अनुरूप कार्य का विभाजन किया गया ताकि समाज का एक सुव्यवस्थित ढांचा खड़ा हो सके और समाज के विभिन्न वर्गों में टकराव की स्थिति न उत्पन्न होने पाये। इसी मूलभूत सिद्धांत पर आधुनिक युग में मानव विज्ञान विषय को विकसित किया गया है जिसमें विभिन्न जातियों की उत्पत्ति पर व्यापक अध्ययन किया जाता है और उनके इतिहास को विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि हर मनुष्य एक समान है पर वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टि से हर व्यक्ति एक समान नहीं है। हर व्यक्ति के उंगलियों के चिन्ह भिन्न होते हैं जिनसे उस व्यक्ति की पहचान को वैज्ञानिक आधार पर सुनिश्चित किया जाता है। इसी प्रकार हर परिवार या वंश की डी.एन.ए. मैपिंग भिन्न होती है जिसके आधार पर व्यक्ति की पहचान की जाती है। पर इन सब वैज्ञानिक बारीकियों को समझने के लिये उसी स्तर का मानसिक विकास होना आवश्यक है। अन्यथा समाज में लबड़ धौं–धौं की स्थिति बनी रहती है क्योंकि समाज में गूढ़ चिंतन और मनन करने वालों की संख्या दुर्भाग्यवश बहुत कम है जिसके कारण लफ़नटूश लोग अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं जिनका वास्तव में स्थान कहीं और होना चाहिए था। ये ही मुख्य रूप से समाज में तीव्रगति के साथ फैल रहे भ्रष्टाचार की जड़ है जो रोग अब कैंसर का रूप ले चुका है और देश के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को विवश होकर लिखना पड़ता है कि भ्रष्टाचारियों को निकट के बिजली के खम्बे से लटका कर फांसी दे दी जानी चाहिये। यह सब क्या इंगित करता है। यह साफ दर्शाता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था पूर्ण रूप से ध्वस्त हो चुकी है और हर व्यक्ति अपने आदर्शों और मूल्यों को तिलांजलि देकर शीघ्रातिशीघ्र धन संचय कर लेना

चाहता है क्योंकि समाज में अब कुछ ऐसी धारणा बन गयी है कि जीवन में रुपया ही सब कुछ है वही हल्लात–ए–मुश्किलात है। अब मनुष्य अपने धर्म से भटक चुका है जिसके दुष्परिणाम धीरे–धीरे छनकर हमारे सामने आ रहे है और हम बगलें झांक रहे हैं क्योंकि मर्ज़ अब लाइलाज हो चुका है।

जहां एक ओर धर्म समाज को अनुशासित कर सुव्यवस्थित करता है वहीं दूसरी ओर अधर्म समाज में अनेक विसंगतियों को जन्म देकर उसको विनाश की ओर अग्रसर करता है श्रीमद्भगवतगीता के चौथे अध्याय के सातवें और आठवें श्लोक में स्पष्ट कहा गया है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

अर्थात् जब जब इस मायावी संसार में धर्म की हानि होती है तो उसे पुनः स्थापित करने के लिये भगवान स्वयं किसी न किसी रूप में इस संसार में अवतरित होते हैं। धर्म की अपनी संहिता होती है उसका पूर्ण रूप से पालन करना उसके अनुयायी का परम कर्त्तव्य है। इसी प्रकार प्रकृति के अपने नियम होते हैं जो उसका संतुलन बनाये रखने के लिये आवश्यक है। उनके साथ छेड़ छाड़ करना दैवी आपदाओं को निमंत्रण देने के समान है। प्रकृति के इन नियमों का पालन करते हुए हर पशु–पक्षी अपनी प्रजाति में प्रजनन कर अपने वंश को आगे बढ़ाता है, केवल मनुष्य ही इसका अपवाद है जो इन स्थापित प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल कार्य करता है जो किसी भी रूप से तर्क संगत नहीं है और न ही धर्म में इस प्रकार का कोई प्राविधान है।

यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय संस्कृति और धर्म शास्त्रों में अन्तर्जातीय और अन्तर्धामिक विवाह पूर्ण रूप से निषेध हैं जिसके पक्ष में अनेक वैज्ञानिक तर्क दिये जा सकते हैं। कश्मीरी पंडितों के लिए जन्म से मृत्यु तक लौगाक्षि ऋषि ने 24 संस्कारों का पालन करना निर्धारित किया है जिसमें विवाह संस्कार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रयोजन से वर वधू की कुण्डिलियों के गुणों और अवगुणों का उचित मिलान करके एक विशेष मुहुर्त में विवाह संस्कार को सम्पादित किया जाता है ताकि नव दम्पत्ति का वैवाहिक

जीवन हर प्रकार से सुखमय और शान्तिमय व्यतीत हो और वह दीर्घायु हो।

मनु जिसने सर्वप्रथम समाज की विभिन्न जातियों के गुणों और अवगुणों का व्यापक अध्ययन कर उनका वर्गीकरण किया जिसको हम वर्ण व्यवस्था की संज्ञा देते हैं, उसने विभिन्न प्रकार के विवाहों की भी व्याख्या की है। यदि कोई उच्चजाति का पुरुष किसी निम्न जाति की स्त्री के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसको अनुलोम विवाह की संज्ञा दी जाती है यदि इसके विपरीत कोई उच्च जाति की स्त्री किसी निम्न जाति के पुरुष के साथ सम्बन्ध बनाती है तो उसको प्रतिलोम विवाह कहा जाता है। इन दोनों स्थितियों में जो सन्तान गर्भ धारण के पश्चात उत्पन्न होगी उसमें चण्डाल के गुण विद्यमान होंगे।

ब्राह्मन्यां शुद्रजीनतः चण्डाले धर्म वर्जितः (वेदव्यास–1)

शूद्राज्जातस्तु चण्डालो सर्व धर्म ब्राहिष्कृतः (यजुर्वेद–1, 93)

ब्राह्मण्यां शूद्र ससगीज्जाः चण्डाल उच्यते (अनुक्षण–8)

हमें इन श्लोकों से यह आभास होता है कि हमारे धर्मगन्थों में विवाह संस्कार को कितना अधिक महत्त्व दिया गया है। यह केवल दो शरीरों का मिलन नहीं है पर इसमें पूरा भारतीय दर्शन निहित है जिसका प्रभाव निश्चित रूप से भविष्य में आने वाली पीढ़ियों पर पड़ता है। अतः इस दिशा में हर कदम बहुत सोच समझ के और नाप तौल के उठाना चाहिये ताकि बाद में अपनी करनी पर पछताना न पड़े और लोगों को कहने का मौका मिले कि अब पछताये होत का जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।

महाभारत काल में नियोग प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार यदि कोई राजा किन्हीं कारणों से पुत्र उत्पन्न करने में अपने को असमर्थ पाता था तो वह अपने राजवंश को चलाने के लिये किसी ऋषि या मुनि द्वारा गर्भाधान संस्कार करवाता था जिसको अब वैज्ञानिक युग में हम टेस्ट ट्यूब बेबी कहते हैं। पर इस प्रकार के गर्भाधान संस्कार की क्या मर्यादाएं थीं यह एक बहस का विषय है।

धर्म शास्त्रों के अनुसार ''कुल मग्रे परीक्षेत मातृतः पितृतः श्रचेति'' अर्थात् विवाह संस्कार को सम्पादित करने से पूर्व माता पिता तथा कुल इत्यादि की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। तद्पश्चात ''कुलंच शील' च वपूर्वपश्चविद्यां च विज्ञं च समार्थत च एतान् गुणान् सप्त परिक्ष्य देया कन्या बुधैः शेष

मचिन्तनीय'' अर्थात कन्या के माता–पिता का कर्तव्य है कि वर के कुल, शरीर, आयु, विद्या, विज्ञ तथा साधन सम्पन्नता इन सात गुणों की भलीभांति परीक्षा करके फिर कन्या का विवाह संस्कार करें। पर क्या वास्तव में कश्मीरी पंडित धर्म शास्त्रों में वर्णित इन मान्यताओं का पालन कर रहे हैं जिसके दुःखद परिणाम आज हमारे सामने आ रहे हैं और हम अपने को कुछ ऐसी स्थिति में पा रहे हैं कि जहां हम कुछ करने में असमर्थ हैं।

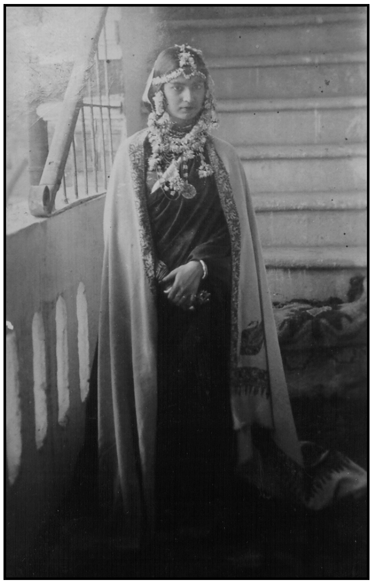

श्रीमती राजवंती शर्गा का फूलों का गहना 1934

एक अजब विडम्बना यह है कि इन अन्तर्जातीय और अन्तर्धार्मिक विवाह को प्रेम विवाह कहा जाता है और कुछ माता पिता अपनी सन्तान में अच्छे संस्कार देने के स्थान पर उनको इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने के लिये खुली छूट देते हैं क्योंकि इसमें वह सस्ते में निपट जाते हैं पर सांस्कृतिक रूप से इन असमान बन्धनों के कारण संयुक्त परिवार टूट कर इधर उधर बिखर रहे हैं और विवाह के पश्चात तलाक की घटनाओं में तीव्रगति के साथ बढ़ोत्तरी हो रही है यह सब क्या इंगित करता है। केवल जम्मू में विभिन्न अदालतों में कश्मीरी पंडितों के लगभग 300 तलाक के मामले लम्बित हैं। यह क्या दर्शाता है। अगर सब ठीक ठाक है तो फिर यह सब क्या हो रहा है। यदि दस विवाह के निमंत्रण प्राप्त होते हैं तो उनमें से छः अन्तर्जातीय विवाह के होते हैं। क्या इस पर बिना प्रभावशाली अंकुश लगाये बिरादरी का मूल स्वरूप अधिक समय तक सुरक्षित रह सकता है। क्या यह भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के मूल सिद्धांत के अनुकूल है। धर्म के अनुसार जब हम किसी दूसरी जाति या धर्म की स्त्री के साथ विवाह करते हैं तो उसकी सन्तान वर्ण संकर कहलाती है जो उस वंश के लिये संकट उत्पन्न कर सकती है। परस्पर विरुद्ध कुलों, धर्मों, जातियों का मिश्रण होकर जो बनता है उसी को संकर कहा जाता है और उसका आचरण स्थापित परम्पराओं और मर्यादाओं के प्रायः अनुकूल नहीं होता क्योंकि वह त्रिशंकु की

भांति यह नहीं समझ पाता कि उसको अपने पिता के गुण ग्रहण करने चाहिये अथवा माता के। वह एक प्रकार से दो विभिन्न सांस्कृतिकों धाराओं के बीच में लटक कर रह जाता है और इस कारण अधिकतर अवसाद का शिकार हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय इतिहास में इन वर्ण संकरों का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं है। इसी कारण धर्म शास्त्रों में इन वर्ण संकरों को न तो मान्यता प्रदान की गई है और न ही उनको श्राद्ध या तर्पण करने का कोई अधिकार दिया गया है।

अतः अन्तर्जातीय और अर्न्तधार्मिक विवाह के हर पहलू पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये और उसे कम से कम प्रगति का सूचक कदापि नहीं मानना चाहिए। इसी में बिरादरी का हित निहित है।

यहां पर यह बताना अनुचित न होगा कि दिल्ली की बाजार सीताराम के कूंचए काश्मीरी पंडितान के निवासी पंडित मोहन लाल जुत्शी प्रथम कश्मीरी पडित थे जिन्होंने अनेक अरब देशों की यात्रा की और वहां के विभिन्न राजघरानों की लड़कियों के साथ लगभग 16 मुताह किये जिसके कारण सन् 1834 में उनको बिरादरी से निष्कासित कर दिया गया। इसी प्रकार सन् 1905 में पंडित विष्णु दत्त भट ने एक जालंधर की पंजाबी युवती के साथ प्रथम अन्तर्जातीय विवाह किया पर वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के रंग–बिरंगी विवाहों के कारण कई प्रतिष्ठित कश्मीरी पंडित खानदान अपना अस्तित्व समाप्त कर चुके हैं। यदि हम अब भी न संभले तो फिर समय कब आयेगा।

हम आज कल वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार के विषम विवाहों को हम विज्ञान की कसौटी पर भी कसें। जेनेटिक्स एक बिलकुल नया विषय विकसित हुआ है जो मानव या किसी जीव की उत्पत्ति से लेकर उसके विकास और अन्य आयामों की विस्तृत जानकारी देता है। इससे अनेक वंशानुगत जानकारियां प्राप्त की जा सकती हैं क्योंकि जीन मानवशरीर की संरचना में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उसके गुण तथा अवगुण निर्धारित करते हैं। जैविक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि हर जाति की अपनी अलग विशेषतायें होती हैं जिनके आधार पर उनका वर्गीकरण किया जाता है। अतः इसमें घालमेल करने से उनकी विशिष्ट पहचान नष्ट होती है। वंशानुगत गुण कई पीढ़ियों तक चलते हैं अतः उन्हें उसी प्रकार

संरक्षित रखना चाहिये न कि उनको प्रदूषित कर समाप्त किया जाये। प्रिय मित्रों अच्छा होगा कि हम अपने मूल स्वरूप को बनाये रखें वरना कहीं ऐसा न हो कि हम स्वयं अपने अस्तित्व को ही न समाप्त कर बैठें क्योंकि हमारी संख्या इतनी अधिक नहीं है कि हम इस प्रकार के प्रयोगों को बढ़ावा दें जो बाद में अपने ही लिये संकट उत्पन्न कर दें। यहां बहुत बड़ा प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तव में समाज के हर वर्ग का उद्धार करना केवल कश्मीरी पंडितों का ही दायित्व है क्या टाट में मखमल का पैबन्द लगाना उचित है। किसी ने ठीक कहा है कि –

जहां सुमति तहां सम्पत नाना।
जहां कुमति तहां विपद निदाना।।

हमारे नेतागण और झुनझुना

जब मैं अपने रिक्त पलों में एकान्त में बैठकर चिंतन मनन करता हूँ तो अनायास ही मेरा ध्यान झुनझुने पर केन्द्रित हो जाता है कि यह भी क्या कमाल की चीज़ है और इसको बनाने वाला कितना चतुर मनुष्य होगा। इस झुनझुने को वाद्य यन्त्रों में किस श्रेणी में स्थान दिया जाये यह स्वयं आप में एक शोध का विषय है। यह स्वयं इतनी जटिल समस्या है कि आसानी से इसका समादान ढूंढ पाना प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है। यह बिलकुल ठीक उसी प्रकार है जैसे हमारे समाज के स्वयंभू नेतागण सुर्खियों में बने रहने के लिये किस अवसर पर क्या पैंतरा मार दें यह कह पाना कभी–कभी बहुत टेढ़ी खीर हो जाता है।

जब मैं किसी मित्र की बारात में किसी बड़े आकार के झुनझुने को किसी को बजाते हुए देखता हूँ तो पता नहीं क्यों एकाएक यह आभास होता है कि इसको बजाना कितना सरल है जो बहुत ही आसानी से थोड़ा सा अभ्यास करके कोई भी व्यक्ति कर सकता है और इस कार्य के लिये किसी प्रकार के विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। केवल इसको हाथ में लेकर इधर उधर हिलाने से काम चल सकता है। इस यंत्र में एक विशेष बात यह है कि यद्यपि स्वयं इसका कोई स्वर नहीं होता पर अन्य वाद्य यंत्रों के साथ संगत में यह सोने पे सुहागा वाला कार्य करता है। ठीक इसी प्रकार हमारे स्वयंभू नेतागण भी कोई अपनी ठोस नीति बनाने में विश्वास नहीं रखते। वे अवसर के अनुसार अपने निजी स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए अपने आकाओं के स्वर में स्वर मिलाने में विश्वास रखते हैं ताकि अपने उल्लू को ठीक से सीधा किया जा सके। वे उसी के अनुसार समय समय पर अपनी नीतियों को निर्धारित करते हैं जिनसे आम आदमी का न तो कोई सरोकार है और न ही कुछ लेना देना है। वे केवल अपने व्यक्तिगत हितों को सबसे अधिक तरजीह देते हैं और अपनी नेतागीरी को चमकाने के लिये हर प्रकार के हथकण्डों का प्रयोग करते हैं।

कुछ इन्हीं विशेष गुणों के कारण अन्य वाद्य यंत्रों की तुलना में झुनझुने का अपना अलग महत्त्व है। कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति स्वयंभू नेतागणों में भी पाई

जाती है जो बिना किसी झुनझुने के अपने आपको एकदम निःसहाय और अकेला अनुभव करते हैं जिसके कारण झुनझुने का अस्तित्व और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। वैसे तो यह झुनझुने निश्चित रूप से कई प्रकार के और कई आकार के होते हैं पर इनके बिना किसी नेता का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल पाता है। जब भी कोई नेता कहीं आता जाता है तो स्वाभाविक रूप से यह झुनझुना उसके आगे–पीछे बजता रहता है जो उस नेता के मौजूद रहने का निरन्तर आभास दिलाता रहता है और उस नेता के व्यक्तित्व में चार चांद लगाता है जिसके कारण आम जनता पर उस नेता का दबदबा कायम होता है। वैसे कभी कभी कुछ नेतागण एक झुनझुने को लटकन कहकर भी सम्बोधित करते हैं जो उनके व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग होता है जिसके आभाव में उनको अपना जीवन नीरस लगता है और जिसके अभाव में वे भयंकर अवसाद का शिकार हो जाते हैं।

इस झुनझुने की उपस्थिति से नेता के आसपास का वातावरण एकदम झन्नाटेदार हो जाता है और लोग बाग नेता का पूरे आदर के साथ सम्मान करते हैं। हर तरफ नेता की जय जयकार होती है। वहीं झुनझुने की अनुपस्थिति में नेता का मुंह लटक जाता है और पूरे वातावरण में शमशान के समान सन्नाटा छा जाता है और नेता बेचारा किसी भी बैठक में जाने का साहस नहीं जुटा पाता है।

वास्तव में यह झुनझुना एक नेता के लिये एक पतवार के समान होता है जो उसकी नय्या को साहिल तक ले जाता है। यह झुनझुना सदैव बहुत ही सतर्क और चाक चौबंद रहता है वह सदैव कान लगाये बैठा रहता है कि कब उसके नेता का बुलावा आ जाये और उसे उसके दुःख के निवारण के लिये प्रस्थान करना पड़े। ऐसे अवसर पर नेता तुरन्त अपने झुनझुने को तलाशने लगता है और दूसरी ओर झुनझुने भी अपने स्थान पर तत्पर रहते हैं कि पता नहीं कब उनको याद कर लिया जाये और वह बजते हुए अपने प्रिय नेता के समीप पहुंच जायें। इसीलिये हमारे एक खास नेता अपने साथ सदैव एक अदद बेहतरीन किस्म का झुनझुना रखते हैं।

प्रिय मित्रों कभी हमारे भी दिन थे जब नाना प्रकार के झुनझुने हमारे आगे पीछे घूमते रहते थे और एक इशारा पाते ही बड़े जोर के साथ बज उठते थे। सच कहें तो हमारा घर क्या था एक प्रकार से इन झुनझुनों का मानो संग्रहालय

था। जब कभी भी अंग्रेज साहब बहादुर तशरीफ लाते थे तो हमारे पितामह बड़े गौरव के साथ उनको अपने झुनझुनों का कलेक्शन दिखाते थे और वह गर्व से कहता था कि राय बहादुर साहब आपका झुनझुनों का संग्रह तो बड़ा ही अनूठा और निराला है जो आश्चर्यचकित कर देता है। हम अगली बार आपको म्यूनिस्पेलटी का चेयरमैन अवश्य बनायेगा। उसके यह वाक्य सुनकर हमारे पितामह गदगद हो जाया करते थे। एक नेता जी को इन झुनझुनों से इतना अधिक लगाव था कि वह स्वयं एक बहुत हलब झुनझुना बन गये थे और बड़े–बड़े आला अफ़सरों और ओहदेदारों के आगे–पीछे चलते रहते थे। यह झुनझुनों की कहानी पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है और अब कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि यह गाथा समाप्त होने वाली नहीं है क्योंकि झुनझुने से नेता में बराबर दम बना रहता है। उससे उसके व्यक्तित्व में चार चांद लग जाते हैं और व्यापक समाज में उसकी हनक बनी रहती है। नेता को विशेष प्रकार के गर्व का अनुभव होता है जो उसके आत्म सम्मान में उभार लाता है। अब यह यह प्रवृत्ति हमारी नसों में बहते हुए रक्त में मिल चुकी है। इसके बिना जीवन अब नीरस और कल्पना विहीन लगता है। अंग्रेज कब के चले गये, देश को स्वतंत्र हुए लगभग 60 वर्ष हो चुके हैं पर व्यवस्था में कहीं भी कोई विशेष बदलाव नहीं है। झुनझुने पहले भी बजते थे और अब भी बज रहे हैं। समय बदले, युग बदले पर झुनझुने पालने की प्रथा में परिवर्तन आना प्रायः असम्भव सा प्रतीत होता है। यह एक प्रकार से सनातन है जिसका न कोई आदि है और न ही कोई अन्त है। यह अब हमारी जीवन पद्धति का एक अभिन्न अंग बन चुका है। जो व्यक्ति झुनझुने पालने की कला में माहिर नहीं है वह एक अच्छा नेता बनने का गुण नहीं रखता।

प्रिय मित्रों समय की नजाकत को पहचानिये और उसी के अनुसार अपने आचरण में बदलाव लाने का प्रयास करिये ताकि कहीं ऐसा न हो कि समय के अभाव में आप की रेलगाड़ी छूट जाये और आप प्लेटफार्म पर हाथ मलते इधर से उधर टहलते हुए नज़र आयें। बेगानी शादी में अब्दुल्ला बनकर दीवानगी करने से किसी का कोई भला नहीं होने वाला। सर्वप्रथम स्वयं को पहचानने का प्रयास कीजिये ताकि आप किसी गलतफहमी में किसी नेता के छलावे का शिकार न बनें जिसके लिये बाद में आपको पछताना पड़े। हर नेता के खाने के दांत और दिखाने के दांत और होते हैं। वास्तव में हर व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। एक चतुर नेता सदैव कुछ झुनझुनों को अपने बस

में रखता है और उनका शोषण करता है। अच्छा होगा कि हम किसी नेता की लटकन बनकर अपना जीवन बर्बाद न करें। हम अपने अतीत से सबक लें और अपने भविष्य को संवारने का प्रयास करें। किसी दूरदर्शी ने ठीक ही कहा है–

''यहां आते आते सूख जाती है कई नदियां
हम को मालूम है पानी कहां ठहरा होगा।''

एक ऐतिहासिक दस्तावेज़
कश्मीरी पंडितों के नैशनल क्लब का गठन और बिरादरी का विघटन

लखनऊ नगर में नवाबी शासन काल (1775–1856) को कश्मीरी पंडितों का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। इस काल खण्ड में बहुत बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडित सीधे घाटी से तथा उत्तर भारत के अन्य प्रमुख नगरों और रजवाड़ों से लखनऊ में आकर बसे और उन्होंने अपनी योग्यता तथा कार्यकुशलता के बल पर नवाबों के राजदरबार में उच्च पद तथा बड़ी–बड़ी जागीरें प्राप्त कीं जिसके कारण उन्होंने जीवन के हर सुख सुविधा का भरपूर आनन्द लिया। चूँकि उस समय नौकरी बड़ी आसानी से पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र को प्राप्त हो जाती थी अतः उनको कभी किसी बात की न चिन्ता हुई, न उन्होंने कभी किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता समझी। आमतौर पर 10–12 सदस्यों के संयुक्त परिवार होते थे जिनका एक मुखिया होता था जिसका वचन गीता की कसम के समान समझा जाता था और उसका पूर्ण अनुशासन के साथ पालन करना उस परिवार के हर सदस्य का परम कर्तव्य माना जाता था। क़ौम, समाज, संगठन इत्यादि की कोई कल्पना किसी के पास नहीं थी। सब अपने–अपने शगलों में मस्त रहते थे। पर कभी–कभी दुर्भाग्यवश एकाएक परिस्थितियाँ एकदम बदल जाने के कारण संकट भी उत्पन्न हो जाते हैं और व्यक्ति को विवश होकर अपने और अपने परिवार के भविष्य के बारे में सोचने को बाध्य होना पड़ता है। कुछ ऐसी ही विषम परिस्थितियाँ तब बनीं जब अंग्रेजों ने सन् 1856 में अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अली शाह को राजसिंहासन से उतारकर अवध के शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। अंग्रेजों ने न केवल अनेक कश्मीरी पंडितों को जो नवाब के मुलाज़िम थे, पदमुक्त कर दिया अपितु उनकी जागीरें और जायदादें भी कुर्क कर लीं और उनके सामने अपने और अपने परिवार के जीवकोपार्जन के लिये संसाधन जुटाने का संकट उत्पन्न हो गया।

जब कभी भी किसी क़ौम या समाज में इस प्रकार की अनिश्चितता की स्थिति बनती है तो उसका सही मार्गदर्शन करने के लिये एक युग पुरुष जन्म लेता है। कश्मीरी पंडितों के समाज को इस ऊहापोह की स्थिति से उबारने के लिये जो पथ प्रदर्शक मिला उस दृष्टा का नाम था पंडित शिव नारायण बहार जिसने अपनी क़ौम में इस कठिन समय में न केवल नवचेतना जागृत की अपितु उसमें एक नये जीवन संगीत का संचार किया और उसे विषम परिस्थितियों का भी निर्भीक होकर डटकर सामना करने का पाठ पढ़ाया।

पंडित शिव नरायण बहार वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने क़ौम, समाज और संगठन की कल्पना को 19वीं सदी के उत्तर्राध में एक साकार रूप प्रदान किया और जिसको समाज के अन्य वर्गों ने बाद में कश्मीरी पंडितों से अंगीकार किया। यहाँ पर सुधी पाठकों को यह बात विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है कि अंग्रेजों के शासन के प्रारम्भिक दौर में किसी भी समाजिक संगठन को खड़ा करना लोहे के चने चबाने के समान था और विशेष रूप से कश्मीरी पंडितों का संगठन जो किसी का नेतृत्व शीघ्र स्वीकार करने को मानसिक रूप से तत्पर न हों। पंडित शिव नारायण बहार को बिरादरी के सदस्यों को अपने पक्ष में करने के लिये धरातल पर काफ़ी कठिन कार्य करना पड़ा और उनकी शंकाओं का अपने तर्कों द्वारा समाधान करना पड़ा। इस प्रकार काफ़ी विचार विमर्श और कठिन परिश्रम के उपरान्त लखनऊ में 9 फरवरी सन् 1868 को जलसा–ए–तहज़ीब नाम से प्रथम सामाजिक संगठन का गठन हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा बिरादरी के युवा वर्ग में एक नवचेतना जागृत कर उनको देश का एक होनहार नागरिक बनाना था जो अपने चारों ओर घटित हो रही घटनाओं के प्रति सचेत और सजग हो और जो अपने नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों को भलीभाँति समझ सकें। पंडित शिव नारायण बहार ने अपने अथक प्रयासों द्वारा अपने संगठन के माध्यम से कर्मठ और प्रतिभाशाली युवाओं की एक ऐसी जमात खड़ी कर दी जो उनके विचारों को एक जन आन्दोलन का रूप दे सके और बिरादरी में क्रान्तिकारी सामाजिक सुधार लाकर उसे कुरीतियों से पूर्ण रूप से मुक्त किया जा सके। जिस युवा वर्ग ने इस कार्य में उस समय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी उनमें प्रमुख थे पंडित गंगा प्रसाद शर्गा, पंडित हरिहर नाथ सोपोरी, पंडित बिशम्भर नाथ चकबस्त, पंडित कृष्ण नरायण दर, पंडित इक्बाल कृष्ण शर्गा, पंडित ज्वाला नाथ कौल, पंडित कुंवर बहादुर शुंगलू, पंडित गंगा प्रसाद तैमनी,

पंडित श्याम नरायण मसलदान, पंडित शिव नरायण शिवपुरी तथा पंडित कृष्ण नरायण ज़रचोब इत्यादि।

जलसा–ए–तहज़ीब नामक इस संगठन की गतिविधियों को एक नियमित रूप से गति प्रदान करने के उद्देश्य से गोल दरवाज़े में एक कमरा किराये पर लेकर उसका कार्यालय खोला गया जिसमें एक पुस्तकालय भी स्थापित किया गया विभिन्न सामाजिक तथा राजनैतिक विषयों पर बिरादरी के युवाओं को निबन्ध लिखने के लिये दिये जाते थे और उन पर पंडित शिव नारायण बहार स्वयं बैठक बुलाकर टीका टिप्पणी करते थे ताकि बिरादरी का युवा वर्ग अपने जीवन के उत्थान के लिये मानसिक रूप से सक्षम बन सके और उसमें हर प्रकार की चुनौतियों का डटकर सामना करने की क्षमता उत्पन्न हो।

चूँकि पंडित शिव नारायण बहार प्रथम भारतीय थे जो अवध में उस समय डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स बने थे और उनको अंग्रेज़ी भाषा लिखने और बोलने का समुचित ज्ञान था, इस नाते पूरे प्रदेश के वासी उनका बड़ा आदर और सम्मान करते थे। जब उनको स्थानीय स्तर पर एक मज़बूत संगठन खड़ा करने में सफलता मिली तो उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर एक संगठन खड़ा करने की कार्य योजना बनाई ताकि वे अपनी विचारधारा को और अधिक बिरादरी के सदस्यों तक पहुँचा सकें। पंडित शिव नारायण बहार ने इस कार्य योजना को मूर्तरूप प्रदान करने के लिये परीक्षायें समाप्त हो जाने के पश्चात सन् 1871 के अप्रैल माह में उत्तर भारत के उन सभी नगरों का व्यापक दौरा किया जहाँ बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडितों की आबादी थी और उनका पूरा सहयोग और समर्थन जुटाने का भरपूर प्रयास किया। इसी सन्दर्भ में वह कश्मीर भी गये और वहाँ के पंडितों से इस विषय पर गहन विचार विमर्श किया। अपनी लगभग 2 माह की इस यात्रा के समाप्त हो जाने के पश्चात अपने अनुभवों के आधार पर आपने लखनऊ से मुरसला–ए–कश्मीर नामक पत्रिका 15 जून सन् 1871 को प्रकाशित की जिसने बिरादरी में एक नयी जान फूँक दी। बिरादरी में हो रही इन गतिविधियों का समाज के अन्य वर्गों को पता न लगे इसका विशेष ध्यान रखा गया, अतः इस पत्रिका के प्रकाशन के लिये पंडित श्याम नारायण मसलदान के रानी कटरे के मकान में एक छापाखाना स्थापित किया गया और पत्रिका के प्रकाशन से सम्बन्धित सारा कार्य कश्मीरी पंडित स्वयं करते थे। समाज के किसी अन्य वर्ग के सदस्य का इस छापेखाने में प्रवेश वर्जित था। इस छापेखाने को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिये एक

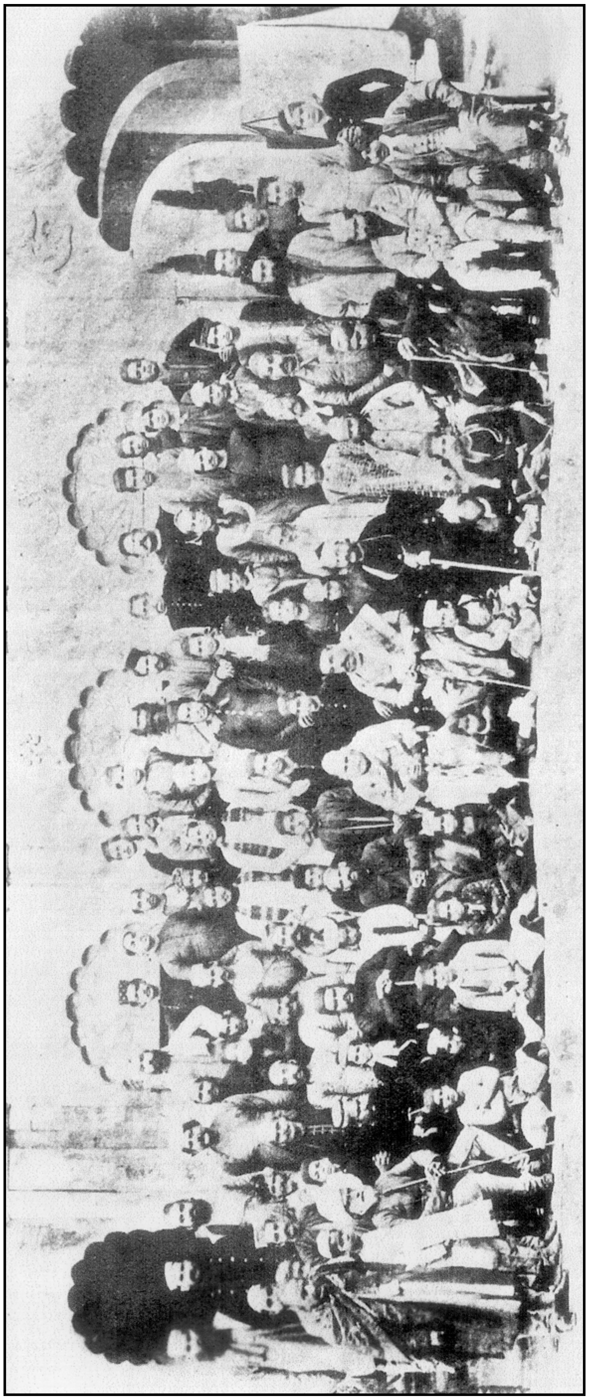

लखनऊ के कश्मीरी मुहल्ले में स्थित ऐतिहासिक पंडित दयानिधान गंज के शादीख़ाने में सन् 1882 में आयोजित कश्मीरी पंडित नेशनल क्लब के वार्षिक अधिवेशन का एक दृश्य।

अन्य पत्रिका मिरातुल हिन्द का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। बाक़ी आर्थिक सहायता बिदादरी के सदस्यों से चन्दे के रूप में ली जाती थी।

पंडित शिव नरायण बहार के यह प्रयास रंग लाये और राष्ट्रीय स्तर पर कश्मीरी पंडित नैशनल क्लब नाम से कश्मीरी पंडितों का एक संगठन अस्तित्व में आया। यह संगठन कब गठित हुआ और इसके संस्थापक पदाधिकारी कौन थे, इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी अब उपलब्ध नहीं है। इसका वार्षिक अधिवेशन सन् 1882 में लखनऊ के कश्मीरी मुहल्ले में स्थित ऐतिहासिक पंडित दयानिधान गंजू के शादीखाने में एक बहुत बड़े पैमाने पर हुआ था जिसमें बिरादरी की जिन नामचीन हस्तियों ने भाग लिया उनके नाम कुछ इस प्रकार हैं– पंडित काशी नरायण बहादुर, पंडित जानकी प्रसाद कौल बर्क, पंडित बृज मोहन नरायण कौल, पंडित कामेश्वर नाथ शर्गा, राजा शिव नाथ सिंह कौल, पंडित इक्बाल नरायण दर, पंडित कन्हैया लाल साहिबी, पंडित हृदय नरायण कौल, पंडित दुर्गा प्रसाद मुशरान, पंडित रतन नरायण दर, पंडित कृष्ण नरायण दर, पंडित राम नरायण उपाध्या, पंडित काली सहाय मुल्ला, पंडित प्रेमनाथ हांगल, पंडित कृष्ण नरायण हरकौली, पंडित बिशन नरायण कौल, पंडित प्रेमनाथ तकरू, पंडित निरंजन नाथ बकाया, पंडित बैजनाथ कौल, पंडित प्राण कृष्ण जिब्बू, पंडित महाराज कृष्ण मुंशी, पंडित गंगा प्रसाद हुक्कू, पंडित मनमोहन कृष्ण मसलदान, पंडित लालजी कौल, पंडित श्याम नरायण मसलदान, पंडित गंगा प्रसाद तैमनी, पंडित बिशेश्वर नाथ हांगल, पंडित सूरज नरायण बहादुर, पंडित रूप नरायण तंखा, पंडित इकबाल नरायण बहादुर, पंडित बृज मोहन कृष्ण मसलदान, पंडित बैजनाथ शर्गा, पंडित अमर नाथ हाक्सर, पंडित स्वरूप नरायण कौल, पंडित प्राण नाथ बजाज, पंडित बैजनाथ हुक्कू, पंडित काशी नाथ तकरू, पंडित अयोध्या नाथ तकरू, पंडित लक्ष्मी नरायण शर्गा, पंडित केशव नाथ गुर्टू, पंडित इन्द्र प्रसाद कौल, पंडित अयोध्या प्रसाद तैमनी, पंडित बिशम्भर नाथ भान, पंडित मोहन कृष्ण बक्शी, पंडित सोमनाथ लंगू, पंडित रामेश्वर नाथ मुबई, पंडित इक्बाल कृष्ण शर्गा, पंडित इक्बाल कृष्ण किचलू, पंडित जगत नरायण मुल्ला, पंडित बिशम्भर नाथ मुशरान, पंडित श्रीकृष्ण तिक्कू, पंडित हृदय नरायण दर, पंडित संगम लाल चक, पंडित कृष्ण लाल रूग्गू, पंडित राधे प्रसाद बांटू, पंडित माधो प्रसाद शर्गा, पंडित गोपी नाथ मुशरान, पंडित इक्बाल नरायण मसलदान, पंडित राम नाथ तंखा, पंडित द्वारिका नाथ तंखा, पंडित मनमोहन नाथ मसलदान, पंडित सूरज

नरायण ज़रचोब, पंडित त्रिभुवन नाथ सोपोरी, पंडित अयोध्या नाथ कुंजरू, पंडित हरीश चन्द्र नाथ मुंशी, पंडित बिशम्भर नाथ तकरू, पंडित काशी नाथ गंजू, पंडित मोहन कृष्ण गुर्टू, पंडित कामता प्रसाद बाँटू तथा पंडित बिशन नरायण दर इत्यादि।

जब एक ओर बिरादरी को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित कर शक्तिशाली करने की कवायद चल रही थी और नियमित बैठकें करके प्रस्ताव पारित किये जा रहे थे, वहीं दूसरी ओर बिरादरी का एक 20 वर्षीय नवयुवक पंडित बिशन नरायण दर अपनी बी.ए. की परीक्षा समाप्त कर अपने कैनिंग कालेज के अंग्रेज़ प्रोफेसर गौल के साथ बिना अपने माता–पिता की आज्ञा लिये और बिरादरी के किसी सदस्य को बताये 21 मार्च 1884 को बम्बई से पानी के जहाज द्वारा गुपचुप तरीके से लन्दन के लिये प्रस्थान कर गया। उन्होंने अपनी इस यात्रा के लिये अपने मित्रों से 3000/– रुपये एकत्रित किये थे। जब उनके इस कृत्य का समाचार कश्मीरी मुहल्ले तक पहुँचा तो पूरी बिरादरी में भूचाल आ गया क्योंकि तब तक ब्राह्मणों के लिये समुद्री यात्रा वर्जित थी और उसके लिये प्रायश्चित करना पड़ता था। यह समाचार प्राप्त होते ही आनन–फानन में बिरादरी की एक आम सभा पंडित दयानिधान गंजू के शादीखाने में आहूत की गयी जिसमें इस मुद्दे पर अनेक वक्ताओं ने अपने तर्क और कुतर्क रखे यद्यपि पंडित बिशन नरायण दर के पिता पंडित कृष्ण नरायण दर उस समय मजिस्ट्रेट थे पर वे भी बिरादरी की धार्मिक भावनाओं के विरुद्ध मोर्चा खोलने का साहस नहीं जुटा सके बिरादरी के सदस्यों की ऐसी धारणा बनी कि कदाचित् कैनिंग कालेज के प्रोफेसर प्राणनाथ वजाज ने पंडित बिशन नरायण दर को लन्दन जाने के लिये उकसाया है, इस नाते इन दोनों व्यक्तियों को बिरादरी से निष्कासित कर दिया जाय और उनसे भविष्य में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखा जाये। यह ऐतिहासिक प्रस्ताव जो 30 मार्च सन् 1884

बैरिस्टर बिशन नरायण दर (1864-1916)

को सर्वसम्मत से पारित किया गया और जिसके कारण बिरादरी का प्रथम बार धर्मसभा और बिशन सभा में विभाजन हुआ उसकी सारी बिरादरी की सूचना के लिये 1 जून सन् 1884 को छपवाकर देश भर में वितरित करा दिया गया जिसके उर्दू भाषा में शब्द इस प्रकार थे–

कार्यवाही जलसा धर्म सभा कश्मीरी पंडितान

यकुम जून 1884 ईसवी

ऐलान

वाज़े हो कि बाद आम जलसा क़ौमी मुनअकिद तीस मार्च 1884 ईसवी जिसकी कार्यवाही तबअ हो चुकी है बइतिफाक़ राय कौम यानि शिरकाय जलसा मज़कूर करार पाया कि अगर जुमला अरबाबे कौम बवजूहात गोनागों या अदम दस्तदाद फुरसत रोज़ाना जमा नहीं हो सकते हैं तो सिर्फ वही असहाब जिनको कोई वज़ह माने न हों रोज़ाना किसी मुकाम पर जमा हुआ करें और वो जुमला अरबाब की जानिब से मज़ाज अज़जाए कार ज़रूरी रहे सिर्फ जब कोई अमरखास जारी करना हो उसमें इसतिसवाब (परामर्श) आम कर लिया करें चुनांचे सब लोगों ने उसको कुबूल किया और कमेटी रोज़ाना की।

(1) जलसा क़ौमी मुनकिद तीस मार्च 1884 ईसवी मुतालिक उमूर ए मुनासिब का इज्जा व इंतजाम।

(2) वास्ते दुरूस्ती ख्यालात् धर्म व ईमान व मज़हब व बक़ाय मरजा व बुजुर्गान के तजवीस मुनसिब यकुम अप्रैल 1884 ई. से ये कमेटी जारी हुयी और अमूरात ज़ेल कमेटी हिज़ा ने जारी और तजवीस किये–

(1) क़ौमी जलसे की कुल कार्यवाही मतबुआ की तरसील बखिदमत अक़ाबिरे क़ौम हर साल हुआ करे।

(2) तजवीस हुआ कि हर महीने में दो बार एक पर्चा मौतबुआ मुशतमिल बरतहरीरात ज़ेल बखिदमत अकाबिरे कॉम इरसाल हुआ करें।

अलिफ़–अफ़जूं अरबाबे कौम इसमायेगिरामी का जो वखतन फ वखतन बनज़र यकजहती दस्खत अपने सप्त फरमा दें।

बे– खुलासाये नक्ल तहरीरात अरबाबे क़ौम जो अलाहेदा सप्त दस्तखत बमज़ीद इनायत बसबाब खासमे अपनी राय ख़ाली या दीगर कलमात हमदर्दी ज़ाहिर फरमाते हैं।

ज़ीम–मज़ामीन अरबाबे क़ौम मुताआलिक धर्म या दरजवाब तहरीर मुखालिफ।

दाल–अखबारे क़ौम जोखुसूसन काबिल इतिलाय आम हो।

(3) बतईदएराय जनाब पंडित केदारनाथ साहब कौल ओगरा जो जलसा 30 मार्च में बजरिए स्पीच ज़ाहिर हुई थी, तजवीज हुआ कि अब बहुत जल्द एक धर्म सभा हफ्तेवार क़ायम की जाये जिसमें कुल अरबाबे क़ौम शरीख होकर फैजियाफ अहकाम शास्त्र व धर्म कर्म व इखलाक़ हों।

ज़िम्न–बात क़ायम होने सबाए मौसूफ के हज़बेराय पंडितान सभा कोई माकूल तजवीज वास्ते इबिदाए तालीम व तदरीस इतफाल के निकाली जायें।

(4) तजवीज हुआ कि अभी तातज़बीस सानी ये पर्चा पन्द्रह रोज़ा बजरिये किसी मतबअ के तबाअ कराना चाहिए।

जिम्न 1–चूँकि ये पर्चा ज्यादा से ज्यादा एक या दो जुस का होगा इसलिए ऐसे एक जजीयात के वास्ते बुजुर्गान ए क़ौम को किसी किस्म की तकलीफ सिवाय राय की शराकत के न दी जाये।

जिम्न 2–पन्द्रह मई के पर्चे में कि पर्चा अवलीन है अगर कुल मुद्दात मजूज़ा की तकमील न हो सके तो इन्तिबा मुद्दात तकमील शुदा में ताखीर न हों।

इसतिदा–बुजुर्गाने दीन परवर की खिदमत में इलतिमास है कि अगर कोई बुजुर्ग वालामनुष अपनी राय ज़र्रीन मूफीद उमूरात दीन व आईन व मुतालिक तजावीस कमेटी लखनऊ बनजर रफा बइकजहतीय कौम ज़ाहिर फरमायेंगे तो हर गोना बाएस मसकूरी होगा। हतीउलवसी तामीले राय में कोशिश की जायेगी बदर सूरत दीगर असबाबे माजुरी गुजारिश होंगे।

गुज़ारिश

ए हमारे बुजुर्गान हामीए दीन व हमअसर बिरादरान खुशाआईन अलमदद हमारी क़ौम की हालत बलिहाज़ बक़ाए धर्म व ईमान व मरजाद बुजुर्गान बहुत

ही नाजुक हो रही है क्योंकि अब तक जो खयालात नाकिस बखुदहा जाबज़ी बाज़े तबआये वा मुनाज़िला थे और उसका बतीन असर वाज़बी ही था किसी को ख़ास दस्तनदाज़ी का मौका न था। मगर अब वो खराबिया जड़ पकड़ती जाती है जो उमूर व हरक़ात ख़िलाफ उसूल मज़हब खुफिया और कुछ–कुछ खौफ के साथ ज़ाहिरी लिहाज़ के परदे में थे जो अब तश्तअज़बाम हो गये और दरसूरत न होने तवज्जो ख़ास के तमाम क़ौम पर उनका तसल्लुत हो गया। अवाम के नजदीक जाहिरी और साफ हमदर्दी व इतिफाक़ बहिमी इस क़ौम में थे जो भी उमूरात मजहबी के ज़लू में हम अनान है मालूम होता है कि जैसे हमारी गफलत ने दौलते नकद को रफ्ता–रफ्ता दीगर बिलायत में पहुँचारया यह दौलत जो लाज़वाल कहलाती थी अब इस पर भी वो राज़ क़ौम या कुछ ज़वाल आया चयन से मालूम होता है कि ये भी उस दौलत की कोशिश से उसमें जाकर मिले इस वक्त से पहले ये था कि दौलत फिदाये ज़ान व ईमान है मगर अब क़ाजिया माकूस नज़र आया है। पंडित बिशन नारायन दर को जहाँ शौक तहसीले इल्म व माद्दा इंशापरदाज़ी परमेश्वर ने अदा किया था वहाँ तहज़ीब व लिहाज़ और बुजुर्ग दाश्त और दीगर अवशाफ भी बकशे थे अगर बलताएक अलज़ैल ये क़बूह बनेगा जो हादिस हुई बजरिए ताज़ा तालीम सहसाला के उसके ज़हन से न निकाले जाते जो उसकी तबियत और फिलकत से मालूम होता है कि ऐसे खयालात दर्ज़ी में जिसारत न करता और उसकी जिसारत पर क्या मौकूफ़ है अब जो मामलात उससे कतएनज़र करके रूबक़ार है उसकी वजह खास यही है कि जिन कमसिनो की राय संजीदा नहीं है उनकी लिसानी अयानत बाज़ उन असहाब की तरफ से है जिन पर संजीदगी का इतिलाफ़ है। हमारे नाज़रीन बातमकीन ग़ौर फरमायें कि अलावा ख़्याल धर्म ईमान के ज़ाहिरी बर्ताव दुनियादारी में जहाँ और बहुत से उमूर फर्ज़ हैं मिनजुमला उसके एक हमदर्दी भी है, बक़ौल किसी के.....

दर्द दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को
वरना ताअत के लिए कुछ कम न थी कर्द बुवाँ।

इधर तो एक मर्द बुजुर्ग की हालत पीरेकना की सी हो रही है उधर तमाम ज़माना नाराज़न है (कि हमारी क़ौम का आफताब लन्दन से तुलू हुआ) अफ़सोस अज़ चर्ख जिसे इस दशा को पहुँचाया यह सर्दमोहर्रा का ज़माना दिखाया कि अपनी बेमहल खुशी के सामने उस अज़ीज़ के उन वारिसों को

ख़्याल भी न आया जिनके सीने को शर्क़े आफ़ताब दाग़े मफ़ारक़्त बनाया उसके ख़ास वालिद माजिद की कोफ्त और ख़्वाहिश पर रहम न खाया। हर एक शखस जान सकता है कि दूरी औलाद क्या रंज दिलाती है और फिर उस पर तुर्रा यह हालत ख़ास कि बादअल मश्रक़ीन मुल्क बेगाना थका व तनहा यारी न मददगारी और सिवाये कल्प की सहसाला तालीम व तलक़ीन के बदर्क़ा राह नहीं। इन तफुर्करात ने जो हालत पंडित किशन नरायन साहब दर को पहुँचाई है उसका एक शोबाह अपने गमगुसारों पर ज़ाहिर किया है कि जो हालत ख़बर खानगी अज़ीज़ जिगरबन्द पंडित साहब पर गुज़री उसका असर नाज़रीन पर हुआ होगा। मगर जब पंडित माहब मौसूफ लखनऊ तश्रीफ लाये तो सिवाये उन मोहसिनाने रायगुसार के जो (नमक पर जर्राहत) मुबारकबाद देने को गये थे और जो लोक कि मिलने गये थे उनकी अफसुर्दगी का खुदा ही अलीम है। वाज़े दूरअनदेश और आक़बतबीन असहाब उसकी निस्बत अदायल में फरमाते थे कि गो मुफारिक़त शाक़ होगी मगर उसका असर आरज़ी होगा। काश उन असहाब हिक्मत माआब का मकूला सच होता और हमको यह अफसोस ज़ाहिर करने का मौक़ा न मिलता कि पंडित साहब बाद एक माह के अब फिर लखनऊ तश्रीफ़ लाये हैं। मिजाज़ कसलमन्द है जिसकी वजह से एक दिन जो हकीम मोहम्मद मसीब साहब के पास गये तो हकीम साहब का अव्वल सवाल ये हुआ कि हज़रत क्या आपके दिल पर कोई रंज सख्त लाहक़ है तब एक साहब ने कहा कि आपको नहीं मालूम है इनका जिगर गोशा विलायत भेजा गया है बगौर सुनने इस कल्मे के हकीम साहब मै दीगर हाज़रीन के आबदीदा हुये। अब इस हाल के ज़ाहिर होने से दीगर वरसा के रंज की मिक़दार हासिल हो सकती है।

शहर लखनऊ के अरबाबे क़ौम से बहालत मजमूयी जो बात कभी नहीं हयी थी वो होने लगी। हाल में जो पंडित सूरज नाथ साहब उर्फ आगा बाहर से शादी करने यहाँ तश्रीफ लाये उनकी खिदमत में हाल वाकई अरबाबे क़ौम अर्ज कर दिया गया फरिश्त अरबाबे क़ौम भी पेश की गयी पंडित साहब मौसूफ ने उस वक्त जातिय मसलहत पर नज़र की और शादी के वक्त पर कि तमाम क़ौम की शराक़त जरूरी होती है उस पर खयाल न किया सिर्फ किसी वास्ते खास कि खुसूसियत को मुकद्दम रखा बन्द पर दस्तखत सब्द नहीं किये क़ौम को किसी किस्म का तासुब न था सिर्फ उजर गैर हाज़िरी कर दिया मगर उनकी तामील उमूर गैर ज़रूरी के वास्ते एक बुजुर्ग क़ौम सरगर्म कार रहे और

अरबाबे क़ौम को दीगर उमूरात ज़रूरी की तरफ से जिनमें चार भाईयों की शिराकत से रौनक होती है इस वजह से इतमिनान था जिन असहाब के वास्ते कि उन्होंने एक खास पाज़दारी की है वा मैं दीगर उन असहाब के जिनकी उनको पाज़दारी है बदल कारहाय ज़रूरी में मुनसरिम रहेंगे न मालूम क्या सबब हुआ कि उन लोगों ने हमारे परदेसी पंडित साहब को बावजूद ज़हूर जानिबदारी बिलकुल तनहा छोड़ दिया बरात के साथ वही एक हमारे पंडित बैजनाथ साहब बनारसी बनफ्से नफीस इहतिमाही थे और कोई मनसरिम न था बमुशायदा हाल मारूज़ा जब अरबाबे क़ौम शख्त अफसोस हुआ तो पंडित साहब को जहाँ तक मलाल न हुआ हो थोड़ा है और हक़बजानिब है अगर ये बेऐतनाई उनके तरफदारों को पहले से मालूम होती तो ये बेउनमानी क्यों होने पाती। तमाम क़ौम उनकी रिफाक़त में सर के बल जाती। इस तरफ से उस वक्त तक तहरीरात व मजामीन अखबरात को कुछ जरीयाये बहबूत नहीं समझा गया और न आइन्दा के वास्ते उसका काफी खयाल है। ये जो कुछ अर्स किया गया है या आइन्दा बयान में आयेगा उसकी वजह ये है कि अक्सर तहरीरात को देखने से मालूम होता है कि अक्सर असहाफ को दरियाफ्त हालात की ख्वाहिश है बल्कि अक्सर मुकामात से सवालात सादिर हुये है। उनके मुक्तसर जवाबाद शायकीन को मिलेंगे। एक तहरीर में सवाल है कि जलसाये तहजीब क्यों तोड़ा जाये इसलिए अर्स किया जाता है कि जलासाए तहजीब शैदीगर है क़ौम की गरज़ कश्मीरी नेशनल क्लब से है जिसकी बुनियाद यह है कि जब ये जारी हुआ तब उसके बानी एक–एक अहले क़ौम के पास गये और फरदन–फरदन उसकी मंजूरी इस बुनियाद पर करायी कि आपके बच्चे शाइस्ता होंगे इल्म और इख़लाक सीखेंगे और वही क़ौम बिल्इत्तिफ़ाक़ यकज़बान होकर बदावा यगानियत व इस्तेहकाक़ क़दीम अर्ज़ करती है कि यह क्लब टूटे मगर क्या मानी जो टूटे मगर क्या मानी जो टूटे अरे जनाब बाहम्द गर रिश्ता यगानिअत टूटे सारी क़ौम छूटे मगर यह क्लब न टूटे जिसके औसाफ नाज़रीन को मज़मून अख़बार तम्मनाई से मालूम होंगे और शायद आइन्दा किसी और ज़रिये से वाज़ह होंगे। फ़क्त आखरी मज़मून में हम बसदज़ुबान ईश्वर से दुआ माँगते हैं कि इलाही बुनियाद फसादात ग़ारत हो।

इत्तिलाह

तजवीज़ जल्सा क़ौमी मुनक़िदाह 30 मार्च को पंडित प्रान नाथ साहब उर्फ बक़्शी ये हाज़रीन जल्सा के रूबरू खड़े होकर हर्फ़ बहर्फ़ बाआवाज़ बुलन्द पढ़कर सुनादी थी बाद सब साहिबान ने दसख़्त किये।

तौसीह जल्सा 30 मार्च 1884 ई. मती चैत सौदी तीज सम्वत 1941 बरोज़ यकशम्बा

वाज़्हः रायेज़ियाये बुजुर्गान वाला शान कि मुद्दतख़मीनन तीन साल तक एक कल्ब शहर लखनऊ में इस बयान से काएम हुआ था कि इसमें ख़ास क़ौमी लड़कों का जल्सा रहा करेगा और इल्मी लियाक़त की तरक़्क़ी में पैरवी और कोशिश की जावेगी चुनांचे बनाये चन्दे तो क़रीना बज़ाहिर अच्छा रहा यानी तरक़्क़ी इल्म में पैरवी हुई लेकिन रफ़ता–रफ़ता ऐसे ख़्यालात मुबदल हो गये और ऐसे कुछ असबाब फ़ुतूर तालीम व तलक़ीन में वाकेह हुई कि लड़कों की तबीयत आज़ादाना हो गई और बरख़िलाफ़ तहज़ीब कैफ़िअत जेहल–मुर्कब के मिजाज़ों में पैदा हो गई, हर मेम्बर कल्ब अपने ज़मेबातिल में अफलातून वक़्त और लुक़मान असर बन गया। अब उनके नज़दीक बुजुर्गाने सुल्फ महज़ बेअक़्ल और कम फैहम ठहरे और इन मफहूमाते बातिला की वक़्क़त लड़कों के दिलों में बढही। हर चन्द्र कि और और मुक़ामात में भी बतौर शहर लखनऊ कल्ब क़ायम हुए लेकिन जैसा कि ख़ास लखनऊ के कब्ल के अड़के खेराह हो गये और हदे इख़्तियार से बाहर निकल गये वैसे और मुक़ामात के कल्ब के लड़कों की कैफियत नहीं ज़ाहिर हुई और लखनऊ के कल्ब में मामला बिलअक्स (विपरीत) नज़र आया। यहाँ तक कि पंडित बिशन नारायन दर ख़ल्फ (पुत्र) पंडित किरन नारायन साहब दर मुनसिफ अतरीला जो लखनऊ के कल्ब में सकतर (सिकरेट्री) या बदिन इत्तिलाह अज़ीज़ान व बुजुर्गान हत्ता कि बिला इत्तिलाह अपनी बालिदा माजिदा के लन्दन अकेला चला गया तो औ कल्ब के लड़कों ने यह हाल मुनके अज़रूये कमाल ताजुब और हैरत कहा कि क्या बिशन नारायन दर अपने–अपने वालिद के अदम इत्तिलाह में लन्दन चला गया। लमको अब इस अमर में तहरीर करने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही। ख़ास इस शहर के लड़के क्यों इसक़दर अज़ाद मशर्ब हो गये। यह लियाक़त इतिफाल है या करीना इनायत बुजुर्गान बुलन्द श्द्ययाल कि जिनसे उनको ख़यालात अज़ाद क़ायम रखने के वास्ते और उमूर व क़यूद मज़हबी को फुजूल

समझने के लिये अब तक मदद मिल रही है। हम उन मुक़ामात के लड़कों से और कल्ब से निहायत खुश हैं कि जहाँ ख़यालात उमदा हैं और ऐसे मुक़ामात के कल्ब के कायम रहने में हमारे ख़यालात ख़िलाफ नहीं हैं।

इस अमर को जुमला अकाबरे क़ौम बजाये खुद तज़वीज़ कर सकते हैं कि बुजुर्गो के तरीक़े और रविश और उनके लेहाज़ और पास मरतिब का ख़याल यह सब लखनऊ के कल्ब में फुजूल और दक़यानूसी ख़याल समझाये जाते हैं। इस कल्ब के लड़के अपने बाप के रूबरू अपने बुजुर्गो को गधा कहते हैं और उनके इरशाद को आवाज़े 'सग' और यह ख़िताब उनको मुख़फी ( ) अता नहीं होता बल्कि बरमला आम कौमी जल्सों में बाआवाज़ बुलन्द यह अलफाज़े शाइस्ता उनके हक़ में इरशाद फरमअये जाते हैं और खुद मौरिद (पात्र) शाबाश व आफरीन होते हैं और नतीजा तालीम कल्ब माकूस वाक़ेह हुआ है। अज़मत बुजुर्गान असलन उनके दिलों में नहीं है और इसलाफ के आईन व रविश को जो बाअसे क़याम अज़मत कौमी और मूजिबे इसतेहकाम (मज़बूती) धर्म हैं क़बीह (खराब) और सबून (खराब) ठहराकर ऐलानिया उसकी मनसूख़ी का हुकुम देते हैं और शिखा यानी चोटी को जो कि बड़ा निशान कौमे हुनूद है काटने लगे और हत्ता कि और लड़कों को भी चोटी काटने पर मजबूर करते हैं। इन जुमला उमूरात की श्हादत मौजूद है। सरासरी ख़ामाह रास्ती तरजुमान ने तहरीर नहीं किये लेकिन बावजूद ऐसे ख़्यालात के उनको बाज़ बुजुर्गान कौमी से वखतन फ वखतन खबर मिलती रहती है और अब तो बखूबी उस तरगीब और अनायत का खयाल ज़ाहिर हो रहा है। दामाद और अज़ीज छोड़ना गवारा मगर क्लब का तोड़ना मज़हब आबाई का छोड़ना समझा जाता है। अंजाम इन सब खयालात आज़ादाना और उसमें अयानत पहुँचने का ये हुआ कि पंडित विशन नारायण दर बगैर इतिला अपने बाप के तनहा लन्दन चला गया और मजीद ये हुआ कि कुल सामान सफर लन्दन इसी शहर में बुजुर्गो की अयानत तैयार हुआ और इस तैयारी में किस कदर अरसा गुजरा लिकिन अल्लाह रे राज़दारी की बावजूद इत्तिला ये राज़ किसी शख्स गैर पर आशकारा न हुआ यहाँ तक कि वो यहाँ से बम्बई गया और बम्बई से जहाज पर सवार हो गया। जब मामला लाइलाज हो गया तब घर वालों पर ज़ाहिर किया कि बम्बई से तार आया कि बिशन नारायण जहाज पर सवार होकर रवाना लन्दन हो गया वो बेचारे सुनते ही सरासीमा और परेशान हुये और कहला भेजा कि पर्चा भेज दो वहाँ से जवाब आया कि पर्चा पढ़कर चाक कर

डाला गया और कहा कि उसे दुआ दीजिये कि वो अच्छा रहे और रुपया बिलायत भेजिये। वाज़े रहे कि अव्वल ये खबर तार रवानगी विलायत जनाब पंडित श्याम नारायण साहब मसलदान के घर पर आया और खुद उनके बिरादर ज़ादा ने बयान किया कि जिसका फिर पता न मिला और चाक कर डालना बयान हुआ बाद जो खत विशन नारायण ने अपने बाप पंडित विशन नारायण साहब के भेजा। इससे ज़ाहिर होता है कि किन बुज़र्गाने क़ौम को वो अपना मोईन और मददगार समझा था और किस वजह से क्या–क्या उम्मीदें और भरोसा उसके दिल में उन साहबों की जानिब से था और बाकी बुजुर्गाने क़ौम के खयालात की निसबत उसके दिल में क्या–क्या असर इस सोहबत से पैदा हो गया था और यह बात भी तहकीक है कि दरहकीकत तार बम्बई से नहीं आया बल्कि हज़रत को बजरिये सलाह मसविरा जो एक मुद्दत से बतौर राज़दारी बाहम था इत्तिला थी कि फलां तारीख को बिशन नारायण जहाज पर सवार होगा उसके बमोहजिप ऐलान उसका कर दिया बहरहाल कोई साहब उज्र अदम इत्तिला अज्म ज़ज्म विशन नारायण साहब लन्दन पेश नहीं कर सकते अलावा इसके और भी कई साहबजादों का अल्म जज़्म और तहीया कामिल सफर लन्दन पशोपेश बहुत तहकीक सुना गया उनके घरों में तलातो मज़ीम पड़ गया और खयालात इतिफाल नौ उम्र तालकम याफता क्लब लखनऊ से बहुत जायदातों की तबाही का ख़याल और बेचारी लड़कियों की बरबादी का अंदेशा जो उनसे मनसूब है कौम में पैदा हो गया और लड़कों की खैरगी और आज़ादी पर नज़र करके ये ख़ौफ और अंदेशा नेहायत कवी और अज़ीम था लेहाज़ा एक जलसा कौमी धर्म सभा चैत्र सदी तीज सम्वत् 1941 यकशम्बा मुताबिक़ तीस मार्च 1884 ईसवी को उजलत के साथ वास्ते इंसदाद तबाही आइन्दा शहर लखनऊ में कायम हुआ। जिसकी इत्तिला शहर में की गयी और जहाँ तक जल्दी में मुमकिन हुआ इतराफ में भी अकाबिरे क़ौम को बज़रिए हुतूत इत्तिला धर्म सभा दी गयी और बेशतर बुजुर्गाने क़ौम ने अपने–अपने साहबज़ादों और अज़ीजों को क्लब जाने से मूमानियत की और उनका जाना कतई मौकूफ कर दिया और इस जल्से में ये क़रार दिया गया था कि जनाब पंडित प्राननाथ बजाज मास्टर से जिनका असर तालीम लड़कों के दिलों पर ज्यादा है दोस्ताना मदद ली जायें और उनके जरिये से लड़कों को इस आफत से बचाने की तदबीर की जाये लेकिन उन्होंने जलसा धर्मसभा मुकरदा (बुरा) समझा हत्ताकि किसी को अपनी जानिब से न भेजा। लेहाज़ा

बमजबूरी जैसा कि बखयालात मरकूमाबाला और हालात मिनदर्जा तजबीस तमाम अकाबर मौजूदा जलसा धर्मसभा सभा ने तजबीस फरमाया वही दर्ज हुआ और जो–जो अशखाश बवजह किसी उर्ज जरूरी के तशरीफ न ला सकें उन साहबों ने अपना इत्तिफाक तजबीसके जाहिर फरमाया और अब तक जाहिर फरमा रहे हैं। ये बात बखूबी वाजे थी कि क्लब का तोड़ना और लड़कों के दिलों का फेरना प्राननाथ साहब के इख्तियार में है जैसे कि अब बखूबी जाहिर भी हो गया इसलिए क्लब का इलतिमास किया गया था ये ऐसा कोई भार पंडित साहब पर नहीं डाला गया था जिससे उनको कोई जहमत होता या उनकी कशरशान होती या बदल उस आफत अजीन का होता जो कि पंडित किशन नारायण दर और उनके मुतलिकान पर नाजिल हुई और भी खहाने क़ौम के दिलों पर उसका असर पुरमलाल पहुँचा। लकिन पंडित साहब मौसूफ ने बरखिलाफ तजबीस धर्मसभा उसी रोज़ जलसा क्लब मुखलिफाना तौर पर किया तो हमेशा जलसा मामूली क्लब यकशम्बा को हुआ करता था या अब हर रोज होने लगा और आज तक उसी खयालात की तरक्की में जिससे कि जररकुल्ली क़ौम को पहुंचा सके कोशिश फरमा रहे हैं। जलसये क्लब में जो कि धर्मसभा के दिन किया गया एक नयी बात थी कि पंडित प्राननाथ साहब ने खत्म जलसे के बाद शुकराने के तौर पर दालमोट वगैरा मंगवाई पहले आप खाई और मुंह की झूठी मान्दा में डाल दी और तबरूकन सब लड़कों मेम्बराने क्लब को खिलायी गयी इससे बढ़कर बात हुई कि पंडित प्राननाथ साहब ने अपनी स्पीच में बआवाज़े बुलन्द मेम्बरों से मुखातिब होकर फरमायायकि भाइयों हम लोगों को अरबाबे क़ौम ने विशन नारायण के बिलायत जाने पर खारिज किया अब ऐसी कोशिश और पैरवी होना चाहिये कि हर महीने एक लड़का विलायत रवाना हुआ करें। शुरकाये जलसा क़ौमी ने बात तजबीस तीस मार्च क्लब को तोड़ देने की बावत बज़रिये खास मेम्बराने क्लब कोशिश की और कर रहे हैं। साहबज़ादगाने क्लब ने जो तहरीरात धर्मसभा लिखी और जाबजां रवाना की उसके जरियेयसे गोया कौमी अजमत तोड़ने में बजाए तोड़ने क्लब के अनायत की खाहितगार हुये। यहां पर हम नहीं लिख सकते कि ये तहरीरारत बमश्वरा हुई हैं या कातिबाने ख़त में अपनी तबीयत से लिखे हैं ख़त में अलफाज़ ज़ेल दर्ज हैं।

''विशन नारायन के विलायत जाने का हाल सुनकर आपको निहायत मसर्रत और खुशी हासिल हुई होगी। और निस्बत अकाबरे क़ौम यह लिखा है

कि लानत है ऐसी कौम पर कि नौजवानों की उम्मीदों का खून करवा दें और हासिदों और कोताहबीनों के जफ़ज़ अहले क़ौम की शान में लिखे हैं। नाज़ारीन खुतूत इस तहरीर से खूब वाक़िफ हैं। हमने इलज़ाम देने के लिये दर्ज नहीं किये हैं लेकिन बड़े अफसोस की बात है कि बावजूद ऐसे हालात के सुना जाता है कि बाज़ बुजुर्गान कौम के ख्यालात आज़ादी पसन्द इतफाल (लड़कों) के माईन (मददगार) हैं। जल्सा धर्मसभा अपनी बहबूदीये क़ौम (क़ौम की भलाई) और इतफाल के ख्यालात की इसलाह (सुधार) जो सोहबत और तक़लीन व तालीम कल्ब से पैदा हो गये हैं, चाहती है और हालात कल्ब कसरे नसल आईन्दा व तफाल मौजूदा जबरहमज़न बिनाये धर्म वसज़ायेकुन नाम क़ौम कश्मीरी पडितों के हैं। लिहाज़ा यही मुनासिब समझते हैं कि कल्ब ख़ास लखनऊ जिसका नतीजा निहाएत ख़राब निकला, तोड़ दिया जाये और क़ौमी अज़मत जिसके तोड़ने से नामोनिशान क़ौम मिट जाने का और एकाएक बेधर्म हो जाने का ख़ौफ व सही है, ज़रूर क़ायम रखी जाये। लिहाज़ा कुल शुरकाये जल्सा धर्मसभा बपाबन्दी तजवीज़ 30 मार्च 1884 ई. फीमाबईन (आपस में) अहद करते हैं कि इस शहर लखनऊ खास में जहाँ ख़ौफ तालीम कल्ब मज़कूरावाला (उपरोक्त) हुआ है, जो शख़्स खिलाफ़ तजवीज़ मज़कूरा क़बल अज़ तोड़ने क्ल के पंडित प्راननाथ साहब बरार माली क्लब लखनऊ को दावत में बुलायेगा या उनके यहाँ दावत में जावेगा जैसा कि जल्सा धर्मसभा शहर लखनऊ में तीस मार्च 1884 ई. में निसबत पंडित प्राननाथ साहब बजाज के सब अकाबिरे क़ौम ने तजबीस किया है वही बर्ताव उस शख्स के साथ भी किया जायेगा। क्योंकि हर एक मुकाम पर अकाबिरे क़ौम को हमसे ज्यादा बजाय खुद पास व ख्याल बहबूदे क़ौम (क़ौम की भलाई) हिब्ज आइन व मरजाद बुजुर्गान जो हर वख्त हम लोगों को फायदा बख्स है और हिब्जे धर्म व बहबूदे नस्ल आइन्दा व इतफाल मौजूदा और कायम रखने अजमत क़ौमी का है। हरचन्द बाज अरबाबे लखनऊ बुजुर्गाने क़ौम के रूबरू जो बहरनौ वाक़िफ़ हक़ीक़त वाक़ई है गुंजाइश कलाम न पाकर बुजुर्गाने मुक़ीमा मुक़ामात मुक़तलिफ (दूसरे शहरों में रहने वाले बुजुर्ग) के पास तहरीरन और तक़रीरन बबर्दाश्त तकलीफ शफर व खर्चे ज़र खुदा जाने क्या–क्या झूठ सच बयान करके इख़्तिलाफ क़ौमी पैदा करने के और बरबादी आइन्दा और इतफाल मौजूदा के लिए खवासतगार अमानत हुये हैं लेकिन जो पसंदीदा और मामला फहम और रास्त बाज़ लोग हैं उनके सामने हक़ व बातिल (झूठ व सच) जुदा हो जाता है हमको अमर लिखना खिलाफे अदब समझते हैं।

लिहाज़ा हम लोग इस अपने इलितिमास आज़िज़ाना (नम्रतापूर्ण) से जुमला बुजुर्गान वाला शान क़ौम को सिर्फ इत्तिला देना हालात रास्त बरास्त से मुनासिब वक़्त समझते हैं और हम लोग उम्मीद करते हैं कि हर एक मुकाम पर बुजुर्गान क़ौम वास्ते हिफाज़त उमूर मसकूरा (उपरोक्त) के खुद तज़बीस मुनासिब फरमायेंगे और हम लोग फरमाबरदार बुजुर्गाने क़ौम समझते हैं और अज़मते क़ौमी को बाइसे इफितिखार और बकाये नामोनिशाँ क़ौम तसव्वुद करते हैं। खुदावन्द करीम इस अज़मते क़ौमी को हमेशा क़ायम रखे।

आमीन–आमीन–आमीन।

इस ऐतिहासिक दस्तावेज पर विभिन्न नगरों के 205 बिरादरी के सदस्यों ने अपने हस्ताक्षर करके बिरादरी की एकजुटता बनाये रखने का दृढ़ संकल्प लिया। जिन महानुभावों ने अपने हस्ताक्षर किये उनके नाम कुछ इस प्रकार थे – पंडित इन्द्र नरायण किचलू, पंडित इकबाल कृष्ण गंजू, पंडित अमरनाथ खूंखू, पंडित अमरनाथ हाक्सर, पंडित बिशम्भर नाथ तंखा, पंडित बैजनाथ बनारसी, पंडित बैजनाथ मिश्री, पंडित बिशेश्वर नाथ बहार, पंडित बिशन नाथ हुण्डू, पंडित बैज नाथ राजदान, पंडित बैजनाथ सप्रू, पंडित बैजनाथ काचर, पंडित बैजनाथ कुंवर, पंडित भैरानाथ हुण्डू, पंडित विश्वनाथ शर्गा, पंडित बिशम्भर नाथ पुलहरू, पंडित बैजनाथ तंखा, पंडित बिशन नरायण वली, पंडित विशम्भर नाथ कौल अकबराबादी, पंडित बिहारी लाल सत्थू, पंडित बैजनाथ कौल शर्गा, पंडित बैजनाथ अशरफी, पंडित बृज नाथ भान, पंडित बिशम्भर नाथ कौल शर्गा, पंडित भोलानाथ हुण्डू, पंडित भवानी प्रसाद रूग्गू, पंडित बिशन नाथ गोर सर्राफ, पंडित बाल कृष्ण दर, पंडित प्रेमनाथ तकरू, पंडित प्रसाद राम तकरू, पंडित प्रेमनाथ हांगल, पंडित प्रेमनाथ ऊंट, पंडित पृथ्वी नाथ पडरू, पंडित प्रेमनाथ खूंखू, पंडित ठाकुरदास शिवपुरी, पंडित जगत नारायण दर, पंडित जानकी प्रसाद पडरू, पंडित श्री नरायण मसलदान, पंडित जय नरायण दर, पंडित जगत नरायण जालपुरी, पंडित श्री नरायणय मुद्धू, पंडित जगत नारायण गोरिया, पंडित देवी प्रसाद शुंगुलू, पंडित दुर्गा शंकर कौल शर्गा, पंडित दयाराम कौल शर्गा, पंडित दीनानाथ तिक्कू, पंडित राज नारायण बक्शी, पंडित राम नरायण सप्रू, पंडित रतन नाथ दर, पंडित राम नारायण बक्शी, पंडित राजाराम बक्शी, पंडित राधा कृष्ण शोरा, पंडित राम शंकर कंठ, पंडित राजकृष्ण हस्तवालू, पंडित राम नरायण भट, पंडित शीतला प्रसाद गंजूर, पंडित श्रीकृष्ण कौल नाला, पंडित श्रीकृष्ण कौल, पंडित संगम लाल हुण्डू, पंडित

सोमनाथ लंगू, पंडित श्रीकृष्ण वातल, पंडित शिव प्रसाद भट, पंडित श्याम नारायण कौल, पंडित शिव नाथ कौल अकबराबादी,, पंडित शिव प्रसाद हज़ारी,, पंडित श्याम लाल मुन्शी, पंडित श्याम प्रसाद जुत्शी,, पंडित श्याम प्रसाद काचरू, पंडित तोताराम घासी, पंडित कृष्ण नरायण दर, पंडित केदार नाथ आगा, पंडित केशव नाथ गुर्टू, पंडित केशव नाथ काचर, पंडित कुंज बिहारी लाल मुंशी,, पंडित केदार नाथ भान, पंडित केशव नाथ चकबस्त, पंडित कुन्दन लाल रूग्गू, पंडित केदार नाथ लंगू, पंडित काशी नाथ कुंजरू, पंडित कामेश्वर नाथ बमरू, पंडित काशीनाथ दर, पंडित कन्हैया लाल वातल, पंडित कृष्ण कुमार ज़र्द, पंडित केशव राम काचरू, पंडित गोपी नाथ शिशु, पंडित गंगा प्रसाद हुक्कू, पंडित गौरी शंकर कौल, पंडित गंगा प्रसाद तैमनी, पंडित गंगा प्रसाद कश्यप, पंडित गोपीनाथ बॉटू, पंडित गोपाल रावल, पंडित गुलाब राय कमला, पंडित गोपी नाथ चन्दर, पंडित गंगा प्रसाद घासी,, पंडित गोपीनाथ कौल, पंडित गौरी शंकर लंगू, पंडित गौरीशंकर कौल नाला, पंडित लाल जी प्रसाद कौल, पंडित लाल जी प्रसाद बालिया, पंडित लालता प्रसाद ज़ारू, पंडित लक्ष्मी नारायण जिब्बू, पंडित लक्ष्मी नरायण सर्राफ, पंडित माधव प्रसाद चक, पंडित महाराज कृष्ण चकबस्त, पंडित मंगल बाबू मुंबई, पंडित महाराज कृष्ण काचर, पंडित निरंजन नाथ बकाया, पंडित नरायण जी मीचू, पंडित हरि कृष्ण बक्शी, पंडित हर प्रसाद मुशरान्, पंडित हिम्मत नरायण दर, पंडित हृदय नरायण किचलू, पंडित हर प्रसाद बर्क, पंडित हर प्रसाद कौल, पंडित हरि शंकर अशरफी,, पंडित बद्री नाथ किचलू, पंडित राज नारायण गरीब, पंडित शिव नाथ चक, पंडित अमर नाथ साहिबी,, पंडित बद्री नाथ शाह, पंडित श्याम नरायण दौर, पंडित भोला नाथ रूग्गू, पंडित शिव नरायण हांगल, पंडित श्रीकृष्ण कौल शर्गा, पंडित कृष्ण जी कल्ला, पंडित ठाकुर प्रसाद औखल, पंडित बिशन नरायण हांगल, पंडित देवी प्रसाद नाला, पंडित चन्द्रभान, पंडित वासुदेव भान, (सब लखनऊ) पंडित उपेन्द्र नरायण मिक्कू, (राम सनेही घाट) पंडित जय गोपाल जुत्शी,, पंडित लालता प्रसाद बटपोरी,, पंडित लक्ष्मी नरायण मुन्शी,, पंडित राज नरायण तिक्कू, पंडित देवी प्रसाद ऊंट, पंडित अमर नाथ बटपोरी, पंडित अयोध्या नाथ ठस, पंडित विशम्भर नाथ सप्रू, पंडित जीवन राम शिवपुरी,, पंडित हरि कृष्ण गंजूर तथा काशीनाथ रैना (सब फैजाबाद) पंडित अयोध्या नाथ कुंजरू (इलाहाबाद) पंडित शीतला प्रसाद खूंखू तथा पंडित बिशम्भर नाथ दर (शाहाबाद) पंडित गोकल नाथ मुट्ठू, पंडित श्याम नाथ रैना, पंडित भैरों

सहाय किम्मू तथा पंडित त्रिभुवन नाथ चकबस्त (सब सीतापुर) पंडित जय नरायण दर, पंडित बिशेश्वर प्रसाद पहलवान, पंडित कामेश्वर नाथ सर्राफ तथा पंडित कन्हैया लाल साहिबी (सब सुल्तानपुर) पंडित विशेश्वर नाथ मुन्शी (सरायमीरान) पंडित जय नरायण काचर, पंडित बिशम्भर नाथ कौल सुंगहया, पंडित शिव नाथ ठस, पंडित अमर नाथ सप्रू कर्बलाई, पंडित बिशन नरायण गंजू तथा पंडित दीना नाथ कौल उगरा (सब लखीमरपुर खीरी) पंडित गोविन्द नरायण रैना, पंडित लक्ष्मण प्रसाद सप्रू, पंडित जानकी नाथ मुशरान, पंडित जुगल किशोर तैमनी, पंडित देवी सहाय सप्रू, पंडित गौरी शंकर घासी, पंडित जगदीश नरायण शिवपुरी, पंडित जीवन राम कौल, पंडित हरि शंकर शिवपुरी, पंडित कृष्ण लाल कौल, पंडित मोती लाल कौल शर्गा, पंडित भोला नाथ काचरू, पंडित अमर नाथ कौल, पंडित बिहारी लाल गौरीचू, पंडित हरि कृष्ण ओखल, पंडित प्रेम कृष्ण कल्ला, पंडित केदार नाथ लंगर, पंडित ज्वाला नाथ शिवपुरी, पंडित धर्म चन्द्र सिब्बू, पंडित जानकी नाथ मदन, पंडित निरंजन नाथ दर, पंडित जिया लाल टोपा, पंडित निरंजन नाथ लंगर, पंडित बैज नाथ वाटलू, पंडित निरंजन नाथ जिब्बू, पंडित अयोध्या नाथ गुर्टू, पंडित जवाहर लाल कौल, पंडित राम नरायण शिवपुरी, पंडित निरंजन लाल कौल, पंडित प्यारे लाल टोपा, पंडित प्राण कृष्ण हुण्डू, पंडित बहादुर सिंह गयी, पंडित लक्ष्मी राम, पंडित वासुदेव प्रसाद, पंडित दाता किशन तथा पंडित प्रेम नरायण (सब दिल्ली)।

इस ऐतिहासिक घटना के पश्चात कश्मीरी पंडित बिरादरी दो घटकों में विभाजित हो गयी और धर्मसभा तथा बिशन सभा के सदस्य आपस में ही तलवारें भाँजने लगे। बिरादरी को संगठित कर शक्तिशाली बनाने के सारे प्रयास एकाएक धराशायी हो गये जिसका दुःखद परिणाम यह हुआ कि 19वीं शताब्दी के अन्त तक कश्मीरी पंडितों का कोई भी शक्तिशाली सर्वमान्य संगठन नहीं बन पाया जिसमें बिरादरी की एकजुटता को बनाये रखने की क्षमता होती और जो युवा वर्ग को एक नयी दिशा देने में सक्षम होता।

बिरादरी के इस दो धड़ों में विघटन और आपसी खींचतान के कारण स्वाभाविक रूप से लखनऊ के कश्मीरी पंडितों का राष्ट्रीय स्तर पर वर्चस्व धीरे–धीरे कम होने लगा जो नवाबी शासन काल में बिरादरी की नीतियों का निर्धारण करते थे और उनके पालन करने का दिशा–निर्देश देते थे। वहीं बिरादरी के सदस्यों की भी कश्मीरी पंडित नैशनल क्लब की गतिविधियों में रूचि कम होने लगी क्योंकि वहाँ सार्थक बात कम और आपस में छींटाकशी

अधिक होने लगी इस बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में लाहौर के कश्मीरी पंडितों ने तब राष्ट्रीय स्तर पर एक दूसरा संगठन खड़ा करने की कार्ययोजना बनाई ताकि बिरादरी के युवा वर्ग को एक नयी दिशा दी जा सके।

इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए पंडित महाराज कृष्ण कौल ग़मख़ार जिनके पूर्वज पंडित सदानन्द कौल मुग़ल सम्राट अकबर के शासन काल में कश्मीर से निकल कर आगरा में आकर बस गये थे, ने सन् 1891 में बिरादरी की पत्रिका सफ़ीर–ए–कश्मीर में कश्मीर नैशनल एसोसिएशन नाम से एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन की घोषणा कर दी। जिसकी सदस्यता ग्रहण करने के लिये प्रवेश शुल्क एक रुपया और मासिक चंदा चार आना रखा गया।

इस नयी संस्था को दमदार बनाने के लिये ताकि बिरादरी के अधिक से अधिक सदस्यों का इसको समर्थन मिल सके इसका चेयरमैन राजा नरेन्द्र नाथ रैना छजबल्ली को बनाया गया जो पंजाब में प्रथम भारतीय कमिश्नर बने। पेशावर के कर्नल प्राण नाथ जो उस समय पोस्ट मास्टर थे तथा पंडित मनोहर नाथ जुत्शी को इसका उपाध्यक्ष बनाया गया। पंडित महाराज कृष्ण ग़मख़ार इसके सचिव बने तथा पंडित हर प्रसाद दर जो लखनऊ से लाहौर पलायन कर गये थे इस संस्था के कोषाध्यक्ष बने। पर इन सब प्रयासों के बाद भी केवल 38 लोग इस संस्था के सदस्य बने जबकि उस समय लाहौर में ही एक मोटे अनुमान के अनुसार कश्मीरी पंडितों की संख्या लगभग 300 थी। फिर यह प्रचार किया गया कि इस संस्था को लखनऊ की बिरादरी के दिग्गज नेताओं पंडित श्याम नरायण मसलदान तथा बैरिस्टर बिशन नरायण दर का समर्थन प्राप्त है इन सारे हथकंडों को अज़माने के बाद भी यह संस्था अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में किन्हीं कारणों से सफल न सिद्ध हो सकी। जिस जोश और खरोश के साथ लखनऊ के कश्मीरी पंडितों ने राष्ट्रीय स्तर पर एक शक्तिशाली संगठन खड़ा करने का प्रयास किया था वह फिर संभव नहीं हो सका। इसलिये किसी समझदार व्यक्ति ने ठीक ही कहा है।

उसकी बातों में न आओ कि वह क्या कहता है।

उसके पैरों की तरफ़ देखो कि वह किधर जाते हैं।।